रजनीश
प्रेम

नव संन्यास अंतर्राष्ट्रीय के बढ़ते चरण

भगवान रजनीश के अमृत आनन्द को कण-कण तक व्याप्त करने ए आनन्द की तरंगें चारों ओर विकीर्ण करने हेतु—नव-संन्यासियों के सक्रि कार्यक्रम देश-व्यापी जीवन्त प्रवाह ले रहे हैं।

कहना न होगा कि सभी संन्यासी मित्र जो जहां भी हैं : देश में प्रेम शांति और आनन्द की रश्मियां अपने जीवन के अंतर्हृदय से बिखेर रहे हैं भगवान प्रेमी मित्र एवं साधक भी इस दिशा में पीछे नहीं हैं। जिससे जो भ बन पड़ रहा है : भगवान के महायज्ञ में अपनी आहुति दे रहा है।

'युक्रांद' को समय-समय पर जो भी कार्यक्रम विदित होते रहते है उनका यथावत् प्रकाशन कर हमारा उद्देश्य होता है कि संन्यासी मित्रों के कार्यक्रम को जन-जागरण के लिए दिशा बनाया जाये। इसी अभीष्ट क्रम में "स्वामी वैराग्य अमृत कीर्त्तन मंडली" का कार्यक्रम प्रस्तुत है।

मंडली के सदस्यों की नामावलि इस प्रकार है :

१. मा आनन्द मधु— आजोल (गुजरात)
२. स्वामी वैराग्य अमृत—गाडरवारा (म० प्र०)
३. स्वामी चिन्मय नारायण— जबलपुर (म० प्र०)
४. स्वामी निर्मल भारती— बम्बई (महराष्ट्र)
५. स्वामी आनन्द समीर— अकोला (महाराष्ट्र)
६. स्वामी योग प्रताप भारती— प्रतापगढ़ (उ० प्र०)
७. स्वामी जाहिद हुसैन भारती— गाडरवारा (म० प्र०)
८. स्वामी सत्य भक्त वैराग्य— अमरावती (महाराष्ट्र)
९. मा धर्म प्रतिभा— आजोल (गुजरात)

कार्यक्रम

स्थान	दिनांक	संयोजक
नंदुरबार	१२–१३–१४ नवंबर, ७२	जीवन जागृति केन्द्र, नंदुरबार (महाराष्ट्र)

शेष कव्हर ३ पर▸▸▸

भगवान रजनीश की सृजनात्मक
जीवन दृष्टि की मासिक
संकलन पत्रिका

नवम्बर १९७२

प्रबुद्ध

वर्ष – ४ अंक – ९ : १०

मूल्य एक प्रति : १-०० रु.
„ वार्षिक : १२-०० रु.

युक्रान्द

नवम्बर : १९७२

मानसेवी

सम्पादक : अरविन्द कुमार

उप-सम्पादक :
आलोक पाण्डे, 'आकुल' राजेन्द्र

व्यवस्थापक :
स्वामी धर्म सरस्वती

अनुक्रमणिका

कृष्ण का दर्शन : एक दृष्टि	३	संकलन : मा योग मीरा, जूनागढ़	
आनन्द सम्पदा—स्वयं में	४	भगवान श्री की बोध कथाओं से	
स्व० मा योग भगवती (श्रद्धांजलियां)	५	स्वामी अगेह भारती एवं साधु आनन्द संगम	
आनन्द व अहोभाव में डूबा हुआ नव-संन्यास	११	संकलन मा योग क्रांति	
मैं बौरी डूबन डरी रही किनारे बैठ	३५	एक प्रेरक विवेचन : स्वामी निर्मलानन्द भारती	
मेरी संन्यास यात्रा	३८	मा अमृत बोधि	
देश के जलते प्रश्न ?	४४	संकलन : एन० जी० वखारिया	
प्रभु-लीला (आबू साधना शिविर—४)	५९	स्वामी अगेह भारती	
श्रद्धा-सुमन : स्व० स्वामी स्वराज्यानंद समर्थ एवं स्व०श्री गणेशप्रसाद पांडे	६४		

गीत : काव्य

ध्यान क्या है ?	३४	साधु योग प्रीतम	
आवरण	३७	स्वामी अमृत परमहंस	
अविश्वास की आग	४१	स्वामी परमानंद भारती	

स्वत्वाधिकारी प्रकाशक : अरविन्द कुमार, ७९०, राइट-टाउन, जबलपुर.
मुद्रण : अशेष प्रिंटर्स, ७८१, राइट-टाउन, जबलपुर. ☎ 2957

कृष्ण का दर्शन : एक दृष्टि

संकलन : *मा योग मीरा*,
जूनागढ़

- कृष्ण के जीवन में वो सब कुछ है, जो एक ही जीवन में एक ही व्यक्ति में इकट्ठा होना मुश्किल है।
- जीसस बांसुरी बजायें यह सोच भी नहीं सकते, लेकिन कृष्ण सूली पर बड़े मजे से चढ़ सकते हैं।
- कृष्ण पूर्ण हैं और पूर्ण सिर्फ वही होता है, जो कभी पूरा हुआ मालूम नहीं पड़ता।
- कृष्ण जैसे लोग किसी की बैसाखी, किसी का सहारा नहीं बनते।
- कृष्ण का जन्म व्यक्ति मात्र का जन्म है और अकेले कृष्ण ही नहीं, हम सब कारागृह में जन्मते हैं।
- गीता को मैं अध्यात्म-शास्त्र नहीं; मनस्-शास्त्र ही कहूंगा।
- कृष्ण समस्त विरोधों का समागम हैं।
- कृष्ण का होना भागवत् है। कृष्ण प्रतिपल जन्मते हैं, जीते हैं और प्रतिपल मरते हैं।
- कृष्ण की शून्यता सक्रिय है, जीवन्त है; महावीर और बुद्ध का आनन्द निष्क्रिय शून्यता है।
- विक्षिप्त व्यक्तित्व कृष्ण जैसी शांति और आनन्द को उपलब्ध नहीं हो सकता।
- कृष्ण, बुद्ध, महावीर और जीसस जैसे लोग मरकर नहीं जीते हैं, जीकर ही जीते हैं।
- कृष्ण से ज्यादा बदलता हुआ व्यक्ति खोजना मुश्किल है। क्योंकि वे तैयार होकर नहीं जीते, इसलिए जिस वक्त समाज से जो भी आता है, उसका उत्तर उसी वक्त निकलता है।
- कृष्ण न केवल दार्शनिक, मनोवैज्ञानिक भी हैं।
- कृष्ण पूरी जिन्दगी को ही स्वीकृत करते हैं, यही उनकी विनम्रता है और सिर्फ ऐसा ही सहज विनम्र व्यक्ति ही निर्मम रूप से अविनम्र होने का साहस कर सकता है।

आनंद-संपदा—स्वयं में

आनन्द चाहते हो ? आलोक चाहते हो ? तो सबसे पहले अन्तस् में खोजो। जो वहां खोजता है उसे फिर और कहीं नहीं खोजना पड़ता। और जो वहां नहीं खोजता, वह खोजता ही रहता है किन्तु पाता नहीं है।

:

एक भिखारी था। वह जीवन भर एक ही स्थान पर बैठकर भीख मांगता रहा। धनवान बनने की उसकी बड़ी प्रबल इच्छा थी। उसने बहुत भीख मांगी; पर भीख मांग-मांग कर क्या कभी कोई धनवान हुआ है ? वह भिखारी था, सो भिखारी ही रहा। वह जिया भी भिखारी और मरा भी भिखारी। जब वह मरा तो उसके कफन के लायक भी पूरे पैसे उसके पास नहीं थे ! उसके मर जाने पर उसका झोपड़ा तोड़ दिया गया और वह जमीन साफ की गई। उस सफाई में ज्ञात हुआ कि वह जिस जगह पर बैठकर जीवन भर भीख मांगता रहा, उसके ठीक नीचे भारी खजाना गड़ा हुआ था !

मैं प्रत्येक से पूछना चाहता हूं कि क्या हम भी ऐसे ही भिखारी नहीं हैं ? क्या प्रत्येक के भीतर ही वह खजाना नहीं छिपा हुआ है, जिसे कि हम जीवन भर बाहर खोजते रहते हैं !

:

इसके पूर्व कि शांति और संपदा की तलाश में तुम्हारी यात्रा प्रारम्भ हो, सबसे पहले उस जगह को खोद लेना जहां कि तुम खड़े हो, क्योंकि बड़े से बड़े खोजियों और यात्रियों ने सारी दुनिया में भटककर अन्ततः खजाना वहीं पाया है।

श्रद्धांजलियां

मा योग भगवती : एक याद

—स्वामी अगेह भारती

आज अक्टूबर १९७२ की ३ तारीख है। एक हफ्ते से निरंतर रात्रि ९ बजे हम अरविन्द भाई के निवास पर टेप द्वारा भगवान श्री के प्रवचन सुनने जाते हैं। कल भी हम गए थे। गीता के दसवें अध्याय पर भगवान श्री की अमृत-वाणी से हृदय भीतर तक भीग जाता है। ऐसी ही अमृत व आनंद से भीगी-भीगी मनोदशा पूरे सप्ताह भर से चल रही है। प्रवचन सुनने बैठते हैं तो ध्यान की मुद्रा बन जाती है। चलते हैं तो नृत्य फूट पड़ता है, थिरकन बिखरी पड़ती है। इसी भावदशा में कल अचानक अरविन्द जी ने बताया, मा योग भगवती नहीं रहीं। सुनकर क्षण भर को अवाक् रह गया। यकीन नहीं हुआ सहसा। क्षण भर बाद स्वर निकला—सच ? अरविन्द जी बोले— हां भइया सच, ४ सितंबर को...! क्षण भर को फिर अवाक्... जैसे सब कुछ ठहर गया हो। फिर श्वास लम्बी हो गई—सीधे नाभि केन्द्र से...! और फिर आंखों से कुछ आंसू निकले दोनों गालों पर होते हुए, दाढ़ी के बीच से गुजरते दाढ़ी के छोर तक पहुंचे और जमीन पर चू पड़े। सोचता हूं क्या मेरे इन आंसुओं का मिलन मा भगवती की मिट्टी से हुआ होगा ? क्योंकि मिट्टी तो सब जगह इकट्ठा व जुड़ी हुई है। इस पृथ्वी के बड़े शरीर का कहीं हाथ होगा, कहीं पैर, कहीं पीठ होगी, कहीं पेट; पर आत्मा तो उसकी एक होगी और कोई वहीं से भी छुए, उसे पता चल ही जाता होगा !!

मा भगवती से पहली बार मेरा मिलना पूना में गीता-ज्ञान-यज्ञ के समय दिसंबर १९७० के अंत में हुआ था। नारायण व मैं संन्यास में दीक्षित होने गये थे। वहीं ममता और प्रेम की उस देवी के प्रथम बार दर्शन हुए थे। हाथ में टंगा हुआ बैग, आंख पर पावरवाला चश्मा, चलने-फिरने में बहुत तेज, काम करने में बहुत ऐक्टिव... फिर भी शांति की प्रतिमूर्ति। कहीं उनके चेहरे पर कभी थकान, अशांति, तनाव या हताशा देखने को नहीं मिली। प्रेम उनका स्वभाव था। भगवान श्री का काम उनका धर्म था।

सुबह प्रवचन के बाद पूना में संन्यासी-संन्यासिनियों की टोली निकली नगर के मुख्य मार्गों पर कीर्तन करने, नृत्य करने। शाम को भी ४ से ५ बजे

सड़कों पर कीर्तन होता। मा की छाया सदा साथ रहती। साथ ही नहीं, वही टोली का संचालन व निर्देशन करतीं। उनका हृदय ममता से इतना पूर्ण था कि अपने से ज्यादा उम्र वाले से भी क्यों रे, तू और तूने जैसे प्रीतिकर एवं आत्मीय संबोधनों से बातें करतीं। किसी को भी कुछ खिला-पिलाकर सुख अनुभव करतीं। एक-एक संन्यासी के सुख-सुविधा का ख्याल रखतीं। कीर्तन में चलने के लिए सबको बटोरतीं भी वे ही। शिव व नारायण को तो कीर्तन के लिए पकड़कर ही रखतीं। ऐसा नहीं कि हमें पकड़ना पड़ता। कीर्तन के रस का स्वाद हम भी तब तक चख चुके थे। असल बात यह थी कि उनसे ठुनकने में हमें मजा आता, क्योंकि फिर उनकी मीठी मातृवत् झिड़की सुनने को मिलती। हम उनके सामने होने पर अपनी उम्र भूल जाते और बच्चे हो जाते और जान बूझकर ठनगन करते, ताकि वे हमें झिड़कें, ताकि वे हमें मनावें। कभी कोई सचमुच न जाना चाहता तो कहतीं— "अच्छा जा, तेरी छुट्टी। पर शाम के कीर्तन में तो रहेगा, न ?" कीर्तन मंडली तो वे संचालित करती हीं, बुकस्टाल पर, बस व ट्रेन के टिकट से लेकर रिजर्वेशन तक, यहां वहाँ जहां देखिए हर कहीं मौजूद रहतीं।

पूना में रात्रि प्रवचन के बाद प्रवचन स्थल से निकलते ही एक होटल पड़ता था। वहीं दर्जनों संन्यासी-संन्यासिनियों को— जो भी सामने पड़ जाय, उनके लिए कोई खास न था, उनके लिए कोई आम न था—लेकर घुस जातीं। उन्हें दूध पीना रहता पर अकेले कैसे पीतीं। तो सबको मीठा-नमकीन, दूध खिलातीं-पिलातीं। एक-एक से पूछ-पूछकर, क्यों रे नारायण तू क्या खायेगा ? ...नहीं, नहीं...कुछ तो खाना ही पड़ेगा। भगवान श्री के साम्राज्य में 'नहीं' कहना मना है। और सारा वातावरण प्रेमपूर्ण हास्य से भर जाता। मिठाइयों की प्लेटें आ जातीं। कोई खाने में फिर भी नखरे करता तो उठकर अपने हाथ से खिलातीं। खुद दूध भर ले लेतीं। होटल वाले व वहां उपस्थित अन्य जन कुतूहल से हमें देखते।

पूना से हमें बम्बई लौटना था। मा हमसे डेढ़ घण्टे पहले वाली ट्रेन से चल देने को हैं, अतः एक-एक से मिल रही हैं। किसी की दाढ़ी की ठोड़ी दबा रही हैं, किसी के कान इतने प्रेम से पकड़ रही हैं कि उतने प्रेम से मा बच्चे का मुख ही चूमती है। कोई शिव सामने खड़ा हो जाता है कि मा तू सिर पर हाथ रख दे तो मंजिल जल्दी मिल जायगी। मा कहती— अरे नहीं बाबा, नहीं, मेरे हाथ रखने से क्या होगा। भगवान श्री ने स्वयं सब पर हाथ

रख दिया है। अब मंजिल की चिंता करता है तू ? शिव फिर सामने खड़ा रह जाता है। और मा का स्नेह उसके हाथ व उंगलियों के माध्यम से सिर पर बरस जाता है। और जैसा मैंने बताया उस मां के लिए सभी शिव हैं, कोई आम नहीं, कोई खास नहीं। उसके हृदय में इतना प्रेम था कि कोई भी उसके सामने पड़ने पर बच्चा हो जाता और बच्चे-सी ज़िद व हरकतें करने लगता और वे प्रत्येक बच्चे के मान को ममत्वमय दुलार देतीं।

हां तो वे एक-एक से मिल रही हैं। कोई पूछता है—मा, तू पहले क्यों चली जाना चाहती है ? हम नहीं जानें देंगे। मा अत्यन्त स्नेह से समझातीं—"अरे बेटे, हमें दफ्तर पहुंचना है काम पर, लेकिन मैं तुम सब को लेने स्टेशन पर आऊंगी। एक घण्टे को ही दफ्तर जाऊंगी। फिर स्टेशन आकर तुम सबका स्वागत करूंगी और फिर साथ रहूंगी।" ... मा सचमुच हमें वी० टी० रेलवे स्टेशन पर लेने आईं। सभी को टैक्सियों में लेकर एक अच्छे होटल में, जहां हमारे भोजन की व्यवस्था थी, ले गईं और भोजनादि करवाया, तत्पश्चात् हमें बुडलैण्ड ले गईं, भगवान श्री से सब संन्यासियों के एक साथ मिलने का समय उसी ने ले रखा था।

पूना से हम जबलपुर लौटे जनवरी '७१ के दूसरे सप्ताह में। एक दिन अचानक मुझे उनके हाथ का लिखा पत्र मिला जिसे उन्होंने २४–२–'७१ को लिखा था। उनके पत्र की कभी कोई आशा, अपेक्षा, संभावना कुछ भी नहीं थी। उन्हें हमारा पता भी नहीं मालूम था, न ही हमें उनका। पर उन्होंने जीवन जागृति केन्द्र के पते पर पत्र भेजा था। जीवन जागृति केन्द्र के पते में भी उन्हें सन्देह था तभी उन्होंने लिखा था 381 or 389। पत्र सर्वश्री शिव-नारायण के नाम था अर्थात् शिव और नारायण। उस पत्र को आज यहां देने का मोह नहीं संवरण हो पा रहा है। अतः, उन्होंने लिखा—

Blessed ones !

This handwriting may not be known ··· but I know you both ··· Since when ··· I know not. In some birth we all were to-gether and again we are the co-travellers. This journey is from the alone to alone—all done, but I remember you all who have come to the same OCEAN to fill up your vessels. How fortunate are we all ! We are doing nothing

gnd getting so much from Bhagwan Shree whose grace is indefinable.

How are you ? what about the Sannyas at your Dharmapatni ? Convey my love to all.

I can read Hindi very well, but can't write so nicely. You can reply in Hindi. Are you coming to Bombay to attend Gita-Gyan Yajna ?

With love—

Bhagwati.

पूना के बाद तो हम कई बार मिले। माउण्ट आबू के सभी शिविरों में मा मिली। आबू में एक दिन हमारे टेण्ट के पास से गुजर रही थीं—बोलीं—शिव, तू सो गया ? मैं उठकर बैठ गया। योग सम्बोधि भी उठकर बैठ गईं। वे पास आईं। बोलीं लेट जा, लेट जा। हम लेट गए। उन्होंने ऊपर ले कम्बल ओढ़ा दिया और हाथ से दो-दो थपकियां दीं—सो जा, सो जा और आगे बढ़ गईं।

उनमें कुछ बातें थीं जो कि बड़ी विशिष्ट थीं और जो कि सामान्यत: देखने को नहीं मिलतीं। जैसे कि—वे जो भी करती थीं उसे करना उनका आनन्द था। उनके लिए कुछ भी काम न था, सब कुछ आनन्द था। शायद इसीलिए वे कभी थकती न थीं और इसीलिए शायद उनमें दिखावे की भावना तनिक भी नहीं थी। इसीलिए कई बार जब बहुतेरे प्रेमी वुडलैण्ड में किसी कार्यक्रम के अन्तर्गत भगवान श्री के सान्निध्य का आनन्द ले रहे होते, ठीक उसी समय वे कहीं अकेले चुपचाप काम में लगी होतीं। एक बात और जो उन्हें बहुत विशिष्ट बना देती है वह यह कि वे सबको समानरूप से प्रिय थीं। उन्हें सबसे समानरूप में स्नेह-सम्मान मिलता था। और इसका रहस्य शायद यह था कि वे सबके प्रति समानरूप से स्नेहपूर्ण थीं। उनका व्यक्तित्व बहुत द्वन्द्व रहित एवं सरल था शायद इसलिए कि वे तैरती नहीं, बहती थीं। वे सब को स्वीकृति देती थीं। वे बहुत अविरोध में जीती थीं।

अंत में यह सच है कि आज उनका स्थूल शरीर हमारे बीच नहीं है। अब मा भगवती उसी रूप-आकार में हंसती हुई हमें यह पूछती हुई नहीं मिलेंगी कि क्यों रे शिव, तुझे रिजर्वेशन तो नहीं करवाना है ? करवाना है तो नाम लिखा दे। लेकिन यह भी इतना ही सत्य है कि वे हमारे साथ सदा मौजूद हैं।

मुझे तो ऐसा ही बोध होता है। कहीं वृक्षों की गहरी हरियाली दिखती है तो लगता है मा भगवती हैं। मन्द-मन्द वायु शरीर के रोयें-रोयें को स्पर्श करता है तो लगता है कि मा भगवती की ममतालु उंगलियों का स्पर्श है। किसी शिशु की आंखों में चमक दिखती है तो लगता है मा भगवती की ही दीप्ति है, कहीं जलती हुई अग्नि में लपटें निकलती दिखती हैं तो लगता है भगवती ही प्रज्वलित हैं। शहर के पूरे शोर व कोलाहल की ऊपरी पर्त के बीच छुपी शांति में उनका आत्मीय स्वर अकसर ही सुनाई पड़ जाता है—उठ रे बेटे कीर्तन का समय हो गया। ... उस दिव्य आत्मा को हम सबके प्रणाम, शत् शत् प्रणाम !

●●

आखिरी दर्शन

मा योग भगवती का देह-त्याग : एक संस्मरण

—साधु आनंद संगम

मित्रों से मालूम पड़ा कि मा योग भगवती को डाक्टर ढोलकिया की अस्पताल में पैर के आपरेशन के लिए दाखिल होना पड़ा है। चूंकि बहिन भगवान श्री के कार्य में रुचि लेती थीं अगर उन्हें अनथक वर्कर कहा जाय तो बेजा न होगा। इसी वजह से हम कुछ मित्रों ने उन्हें मिलने का प्रोग्राम बनाया। ३ सितम्बर रविवार को अस्पताल पहुंचे। वह हम सबको देखकर बहुत प्रसन्न हुईं भगवान श्री और बाकी मित्रों के बारे में पूछती रहीं, बुडलैण्ड का कार्य ठीक से चल रहा है सब पूछती रहीं। वह पलंग पर तो लेटी हुई थीं मगर उनका मन भगवान श्री के कार्य में था। उनकी लगन को देखकर बहुत खुशी हुई। उनने कहा मैं जबसे भगवान श्री के सम्पर्क में आई हूं मुझे बहुत शांति मिली है, सब तरह से आनन्द ही आनन्द है शिकायत का तो कोई सवाल ही नहीं है। जो हो रहा है प्रभु-इच्छा से हो रहा है।

कुछ कर्म बाकी रह गये होंगे जिस वजह से मुझे यहां आना पड़ा है। वैसे ठीक ही हुआ है कि पिछले कर्म का निपटारा हो जावे। क्योंकि मुझे फिर तो वापस आना नहीं है यह मेरा आखिरी जन्म है। हां, कभी भगवान श्री फिर इस पृथ्वी पर आये तो मैं भी उनके साथ आऊंगी। हम उनकी बातों को सुन रहे थे और लजा रहे थे कि कितना दृढ़ विश्वास इनमें है। इनका बोलना शेर

की तरह गरजना मालूम हो रहा था। मैंने उनसे प्रेमपूर्वक कहा कि आप ऐसा क्यों विचार कर रही हैं। दूसरे दिन ही पता चला कि उनका आपरेशन तो ठीक हो गया था मगर उनके दिल की धड़कन बन्द होने से उनकी मृत्यु हो गई। मैं उनसे कल मिलने का वायदा कर आया था मगर मा ने जाने में जल्दी कर दी। मुझे अफसोस है मैं अपना वादा पूरा न कर सका। मेरे लिए वही मा के आखिरी दर्शन थे जिसकी याद हमेशा दिल में बनी रहेगी।

४ सितम्बर ७२ को मा योग भगवती का देह-त्याग हुआ और उसी दिन भगवान श्री का प्रवचन महावीर वाणी पर पाटकर हाल में जरा और मरण पर हुआ है। उन्होंने समझाया है सब दूसरों की मौत को देखते हैं अपनी मौत किसी को याद नहीं आती। शायद मा भगवती ने अपनी मौत को देख लिया था और अपने को भगवान श्री के चरणों में समर्पित कर दिया था। मा तू धन्य है, तेरे चरणों में मेरा आखिरी नमस्कार!

●●●

जीवन और मृत्यु

(भगवान श्री की बोध कथाओं से अमृत वचन)

शरीर को ही जो स्वयं का होना मान लेता है, मृत्यु उसे ही भयभीत करती है। स्वयं में थोड़ा ही गहरा प्रवेश उस भूमि पर खड़ा कर देता है, जहां कि कोई भी मृत्यु नहीं है। उस अमृत भूमि को जानकर ही जीवन का ज्ञान होता है।

★

वह जीवन नहीं है, जिसका कि अन्त आ जाता है। अग्नि जिसे जला दे और मृत्यु जिसे मिटा दे, वह जीवन नहीं है। जो उसे जीवन मान लेते हैं, वे जीवन को जान ही नहीं पाते। वे तो मृत्यु में ही जीते हैं और इसीलिए मृत्यु की भीति उन्हें सताती है। जीवन को जानने और उपलब्ध होने का लक्षण मृत्यु से अभय है।

★

आनंद व अहोभाव में डूबा हुआ नव-संन्यास

संकलन : मा योग क्रांति

संपादन : स्वामी योग चिन्मय

अभी-अभी साधना मंदिर में जो भजन चल रहा था उसे देखकर मुझे एक बात खयाल में आती है। वहां सब इतना मुर्दा, इतना भरा हुआ था जैसे जीवन की कोई लहर नहीं है। सब औपचारिक था— करना है इसलिए कर लिया। तुम्हारा भजन, तुम्हारा नृत्य, तुम्हारा जीवन जरा भी औपचारिक न हो, फॉरमल न हो। उदासी के लिए तो नव-संन्यास में जरा भी जगह न हो। क्योंकि संन्यास मरा तो उदास लोगों के हाथ में पड़ कर मरा।

(१) एक हंसता, नाचता व गाता हुआ संन्यास चाहिये

हंसता हुआ संन्यास, पहला सूत्र तुम्हारे खयाल में होना चाहिये। अगर हंस न सको तो समझना कि संन्यासी नहीं हो। पूरी जिन्दगी एक हंसी हो जाना चाहिये। संन्यासी ही हंस सकता है। (संन्यासियों की जोर से हंसी) उदासी गंभीरता संन्यासी के लिए एक रोग जैसा है। इसलिए आज तक संन्यासी होना एक ऐसा बोझ-का और भारी गंभीरता का काम कर रहा है, जिसमें सिर्फ रुग्ण और बीमार आदमी ही उत्सुक होते रहे हैं। स्वस्थ आदमी न तो उदास हो सकता, न गंभीर हो सकता।

दिनांक ६ दिसंबर, १९७० को अहमदाबाद में संन्यासियों की एक बैठक को दिया गया भगवान श्री रजनीश का प्रेरणादायी, अमृत उद्‌बोधन। "नव-संन्यास क्या ?" नामक २२५ पृष्ठ की एक पुस्तक का एक प्रवचन। पुस्तक प्रेस में है।

नव-संन्यासी तो नाचता-गाता, प्रसन्न होगा। इसका यह मतलब नहीं है कि वह उथला होगा। सच तो यह है कि गंभीरता गहरेपन का सिर्फ धोखा है। वह गहरी होती नहीं, सिर्फ दिखावा है। जितना गहरा आदमी होगा उतना प्रफुल्ल होगा। जितना भीतर जायेगा, उतना बाहर प्रसन्न होता चला जाएगा। भीतर जाने की परीक्षा और कसौटी ही यही है कि वह कितना बाहर प्रसन्न और हलका होता चला जाता है। जिन्दगी बाहर उड़ने लगे, वेटलेस (भारशून्य) हो जाये तभी समझना कि भीतर गति हो रही है।

इस मुल्क में संन्यास को हंसता हुआ बनाना पहला बड़ा काम है। गांव-गांव, गली-गली, घर-घर हंसी गूंज जाये। संन्यासी हमारा जहां प्रवेश करे वहां प्रफुल्लता छा जाय, वरना उदासी न बचे। हमारे संन्यासी को कोई कहीं देखे तो खुशी से भर जाय। उसके चेहरे, उसके व्यक्तित्व, उसके ढंग, **उसके पूरे जीवन से प्रसन्नता निकले।** लेकिन यह इसलिए कहता हूं कि संन्यास के साथ गंभीर होना ऐसोसियेट (संयुक्त) हो गया है।

तुम्हारा चूंकि पहला ग्रुप (समूह) होगा संन्यासियों का, तुम पर बहुत कुछ निर्भर करेगा कि तुम्हारे पीछे जो लोग आयेंगे अगर तुम उदास रहे तो वे उदास होते चले जायेंगे। आदमी बिलकुल 'इमीटेटिव' है, बिलकुल नकलची है। एक कमरे में अगर बीस आदमी उदास बैठे हैं तो जो आयेगा वह भी उदास हो जायेगा। सोचेगा कि हमने कोई गड़बड़ी की तो फंस जायेंगे। तो तुम पर बहुत कुछ निर्भर करेगा। तुम पर सब कुछ निर्भर करेगा कि तुम्हारे पीछे जो लोग आयेंगे तुम जैसे होओगे, वे वैसे बनते चले जायेंगे।

(२) अहोभावपूर्वक, नृत्यपूर्वक जीवन का समग्र स्वीकार

फिर जो धर्म हंस नहीं सकता वह धर्म बहुत नहीं फैल सकता। क्योंकि इस जगत में कोई भी रोना नहीं चाहता। जो रो रहा है, वह भी मजबूरी में रो रहा है। वह भी रोना नहीं चाहता। जो उदास है वह भी मजबूरी में उदास है, वह भी उदास होना नहीं चाहता। इसलिए अगर हम उदास तरह की व्यवस्था बना लें तो उसमें थोड़ा-सा उदास वर्ग उत्सुक हो जाता है। हम हंसते हुए, जीवन को कहीं अस्वीकार नहीं करते, नकारते नहीं; उसे पूरा पर-मात्मा मानकर स्वीकार करते हैं उसे नृत्यपूर्वक स्वीकार करते हैं, अहोभाव-पूर्वक स्वीकार करते हैं। तो मैंने जो कहा कि तुम जाओ सड़कों पर और गांव में और नाचो और गाओ, वह किसी भगवान की स्तुति में उतना नहीं जितना

तुम्हारे आह्लाद की अभिव्यक्ति है। वह किसी भगवान की स्तुति का उतना सवाल नहीं है जितना तुम्हारी प्रसन्नता को खिलने और फूलने का मौका मिले उसका सवाल है। और भगवान की स्तुति तो हो ही जाती है, जब भी हम आनंदित होकर एक क्षण भी जीते हैं तो हमारे आनंद का वह फूल उसके चरणों में पहुंच जाता है।

(३) प्राणवान संन्यास—जिसमें व्यवस्था गौण बात हो

अभी वहां देखकर मुझे खयाल आया कि वैसी भूल तुमसे नहीं होनी चाहिए। तुम अपने गीत में, नृत्य में व्यवस्था भी देना तो भी व्यवस्था को गौण रखना, प्राण को ही प्रमुख रखना। व्यवस्था होगी, लेकिन वह गौण होगी। उसको तोड़ने की हिम्मत भी किसी क्षण में होनी चाहिए। क्योंकि जब बहुत व्यवस्था ऊपर बैठ जाती है, बहुत नियम और बहुत ढांचा बन जाता है तो भीतर से प्राण सिकुड़ जाते हैं और मर जाते हैं।

तो तुमसे मुझे बहुत व्यवस्था की फिकर नहीं है। तुम्हें बहुत प्राणवान होना है। हां, जितना प्राणवान होने पर भी व्यवस्था चल सके उतना चलाना। उससे ज्यादा नहीं। ध्यान प्राणवान होने पर रखना, व्यवस्था पर नहीं।

(४) संन्यास की एक सर्वथा नई अवधारणा का जन्म

निश्चित ही संन्यास का जैसे ही हम नाम लेते हैं तो संन्यास के साथ जो हजार बातें जुड़ी रही हैं उन्हें तुम्हारा भी जोड़ने का मन होगा। उसको जरा सोच-समझकर जोड़ना, क्योंकि मैं तुम्हें निपट कोई मरी-मराई पुरानी परम्परा से नहीं जोड़ रहा हूं। सच तो यह है कि संन्यास की एक नई ही अवधारणा तुम्हारे साथ जन्म लेती है। तुम्हारे साथ पृथ्वी पर एक नये ही संन्यासी को भेज रहा हूं। आज तुम्हें दिखाई नहीं पड़ेगा, कल दिखाई पड़ेगा जब हजारों आयेंगे उस धारा में तब तुम्हें दिखाई पड़ेगा कि घटना कितनी बड़ी थी। जो प्राथमिक घटना में सम्मिलित होते हैं उन्हें बहुत देर में पता चलता है कि घटना कितनी बड़ी थी। यह तो पीछे पता चलता है। तो तुम्हारे ऊपर दायित्व भी बहुत बड़ा है—बोझ का नहीं, दायित्व का। दायित्व यही बड़ा है कि तुम किसी तरह का बोझ मत इकट्ठा कर लेना, नहीं तो पीछे लोग उसे घसीटते चले जायेंगे।

(५) संन्यास अर्थात् जिंदगी को एक काम नहीं, खेल समझना

संन्यास का मतलब ही यही है मेरी दृष्टि में कि एक व्यक्ति ने जिंदगी को एक काम समझना बंद किया, खेल समझना शुरू किया। **काम नहीं—खेल;**

'वर्क' नहीं, 'प्ले'। अब तुम्हारे लिए जिन्दगी काम नहीं है। अब तुम दफ्तर में भी काम कर रहे हो, तो भी काम नहीं है। अगर तुम चौके में खाना भी बना रहे हो, तो भी काम नहीं है। अगर तुम बुहारी भी लगा रहे हो, तो भी काम नहीं है। तुम संन्यासी हो, तुम्हारे लिए कुछ भी अब काम नहीं है। **काम करना नहीं पड़ेगा, काम होगा, लेकिन तुम्हारे लिए अब सब खेल है।** तुम्हारा दृष्टिकोण खेल का ही होगा। और खेल में ही बुहारी भी लगाई जा सकती है और खेल में बड़ा काम भी किया जा सकता है। लेकिन तब खेल से पीड़ा नहीं आती।

काम छोटे और बड़े होते हैं, खेल सब बराबर होते हैं। यह बड़े मजे की बात है। काम में हायरेरिकी (ऊंचा-नीचा) होती है, कोई काम छोटे का काम है, कोई काम बड़े का काम है। खेल—नॉन-हायरेरिकल (ऊंच-नीच मुक्त) है, उसमें कोई हायरेरिकी नहीं है; उसमें कोई नीचा-ऊंचा नहीं है। खेल यानी खेल, चाहे तुम शतरंज खेलो, चाहे तुम तास खेलो, चाहे तुम गिल्ली-डंडा खेलो, चाहे तुम फुटबाल खेलो; कुछ भी खेलो, खेल कोई छोटा-बड़ा नहीं है।

(६) काम छोटे-बड़े होते हैं– खेल नहीं

जैसे ही जिंदगी खेल बनती है, वैसे ही उसमें हायरेरिकी, ऊपर-नीचे का मामला खतम हो जाता है। तुम्हारे भीतर कोई ऊपर-नीचे नहीं है। किसी भी कारण से नहीं। न कोई ज्ञान में, न उम्र में, न किसी और वजह से। तुम्हारे पीछे भी लोग आयेंगे वे भी तुमसे कोई पीछे नहीं होंगे। जो जब भी आये, वह जैसे ही खेल की दुनिया में सम्मिलित हुआ, वैसे ही काम की दुनिया के जो नियम थे वे लागू नहीं होंगे।

अभी तक संन्यासी की दुनिया में भी काम के नियम लागू होते थे। वहां सीनियारिटी (वरिष्ठता) है, जूनियारिटी (कनिष्ठता) है। वहां जो एक साल पहले संन्यासी हो जाता है वह सीनियर (वरिष्ठ) हो जाता है। जो पीछे आता है, उसको नीचे बैठना पड़ता है। सीनियर संन्यासी ऊपर बैठता है। सीनियर संन्यासी के पैर पड़ने पड़ते हैं। (संन्यासियों की जोर से हंसी) तुम्हारा तो पैर पड़ने का मन हो तो तुम किसी के भी पड़ना। तुम्हें न पड़ने का मन हो तो भगवान भी हो तो मत पड़ना। तुमसे मिलने भी कोई आये और तुम्हें उसके पैर पड़ने का मन हो जाये तो बराबर पड़ना। यह भी मत सोचना कि तुम संन्यासी हो और वह गृहस्थ है।

(७) विनय--संन्यासी की गरिमा है

हमें गृहस्थ और संन्यासियों की भी अवधारणायें तोड़नी हैं । तुमसे कोई मिलने आया है और तुम्हें ऐसा लगे कि पैर पड़ने जैसा लग रहा है, तो बराबर उसके पैरों पर सिर रख देना। तुम्हारा संन्यास उससे सम्मानित होगा। क्योंकि संन्यास की जो मौलिक मनोदशा है वह विनय है, वह विनम्रता है। विनम्रता नियम नहीं मानती, सिर्फ अविनम्रता नियम बनाती है। अविनम्र आदमी कहता है कि ठीक है आप उम्र में बड़े हैं इसलिए हम पैर छू लेते हैं। जो हमसे उम्र में छोटा है उसके कैसे पैर छू सकते हैं। अविनम्र आदमी कहता है कि अपने से बड़े आदमी के पैर छू लेते हैं और जो छोटी उम्र का है, उससे छुला लेते हैं। इस तरह बैलेंस (संतुलित) कर लेते हैं। वह कहता है कि ठीक है, कोई बात नहीं। चलो, ठीक। छूना भी पड़ता है, इसलिए छुला भी लेते हैं तब सब बराबर हो जाता है।

(८) संन्यासी के लिए न कोई छोटा, न कोई बड़ा

तुम्हारे लिए कोई इस जगत् में छोटा-बड़ा नहीं है। यदि छोटा बच्चा तुम्हें प्यारा लगे तो उसके पैर छू लेना सड़क पर चलते। उससे तुम्हारे संन्यास की गरिमा बढ़ेगी, गहरी होगी। और जो संन्यास अहंकारग्रस्त हुआ है, उसे तोड़ने की भी हमें सुविधा हो जायेगी। उसे तोड़ना। मैंने तुमसे पहले कहा कि उदासी, गंभीरता— अगर ठीक से समझोगे तो— ये सब अहंकार के लक्षण हैं। असल में अहंकारी आदमी खेल नहीं खेल सकता। अगर खेल भी खेलेगा तो खेल को काम बना लेगा। उसमें भी उसको जीतना ही चाहिए।

ईजिप्त में एक फेरोह नामक सम्राट हुए। वे खेल खेलते थे, लेकिन नियम उसमें यह था कि जीत सदा उसकी ही होनी चाहिए। वह जो उनके साथ खेलता था, उसका हारना सुनिश्चित है। हारना ही है उसे। अगर वह जीत गया तो गर्दन कट जायेगी। क्योंकि वह कोई खेल नहीं है—मामला काम का है, सम्राट जीतना ही चाहिए।

गंभीर आदमी खेल भी खेले तो काम बना लेता है। संन्यासी काम भी करे तो उसको खेल बना लेगा। यह संन्यासी और गृहस्थ का फर्क है— काम और खेल का।

(९) तुम सब जगह झुकना--मस्जिद में, मंदिर में, चर्च में

अहंकार अपने तरह के ढांचे बनाता है। वे ढांचे हम नहीं बनने देंगे। तो तुमसे मैं कहूंगा कि पैर छूना किसी के भी, तुम झुक जाना कहीं भी। सड़क

चलते हुए कोई तुम्हें दिखाई पड़ जाये—तुम गये हो नाचने और कोई तुम्हें दिखाई पड़ जाये—तुम्हारा मन हो तो एक क्षण मत रुकना, तुम उसके पैर छूना। तुम कहीं भी झुकना। तुम्हारे लिए सब मन्दिर, मस्जिद, गुरुद्वारे बराबर हैं। तुम कहीं भी झुकना।

तुम्हें सारे लोगों के हृदयों को अनेक-अनेक मार्गों से अपने करीब लाना है। तुम्हारी जिम्मेदारी इतनी बड़ी है जितनी किसी संन्यासी की कभी नहीं थी। क्योंकि कोई संन्यासी था जो महावीर के सामने झुकता था और बुद्ध के सामने अकड़ा रहता था। कोई संन्यासी था, जो कृष्ण के सामने झुकता था, बुद्ध के सामने अकड़ा रहता था। कोई बुद्ध के सामने झुकता था तो जीसस के सामने अकड़ा रहता था।

तुम्हें मैं पहली दफा पृथ्वी पर एक ऐसा संदेश देने को कह रहा हूं, कि सब तुम्हारे हैं क्योंकि कोई हमारा नहीं है। इसका मतलब ठीक से समझ लेना। सब हमारे तभी हो सकते हैं, जब कोई हमारा नहीं है। अगर कोई भी हमारा है तो फिर सब हमारे नहीं हो सकते हैं। **सारे मंदिर, मस्जिद तुमको सौंपता हूं, सब तुम्हारे हैं। तुम सब जगह जाना।**

प्रश्नः— कोई 'न' करे तो, मना करे तो ?

तो तुम दरवाजे पर नाचना, कहना आप भीतर नहीं आने देते तो हम बाहर नाचकर चले जायेंगे। हमारा दिल नाचने का हुआ है, तुम जितनी दूर बता दो हम उतनी दूर से नाचकर चले जायेंगे।

प्रश्न :— मस्जिद वाले भी न नाचने दें तो ?

तो उनसे कहना कितनी दूर! आप जितनी दूर बता दें हम उतनी दूर खड़े होकर नाच लें। लेकिन मस्जिद के परमात्मा को भी हम अपना गीत भेंट कर जायेंगे। तुम जितनी दूर कहो, उतनी दूर से हम वहीं से मस्जिद के परमात्मा को सिर झुकाकर नमस्कार कर लेंगे।

(१०) धर्मों का अन्तर्मिलन—शब्दों से नहीं, कृत्यों से

तुम्हारे ऊपर बड़ी जिम्मेदारियां मेरे खयाल में हैं, क्योंकि इन दो वर्षों में मैं दस हजार लोगों को संन्यास की यात्रा पर चला दूंगा। और जो काम कभी नहीं हो सका है वह हो सकेगा। तो तुम्हें जानकर मंदिर भेजूंगा, मस्जिद भेजूंगा। अगर दस हजार संन्यासी इस मुल्क में मंदिर और मस्जिद और गुरुद्वारे के बीच सम्मिलित हो जायें तो इस मुल्क में दंगे-फंसाद खत्म हो जायें,

इसका कोई कारण नहीं है। असल में जो कहते भी हैं कि सब एक है; कुरान में भी वही है, गीता में भी वही है, वे भी अकड़कर अपने सिंहासन पर बैठे रहते हैं। वे कहते हैं कि सब एक हैं, लेकिन कुछ होता नहीं उससे। वह हो नहीं सकता है।

हमें सब एक करने की कोशिश नहीं करना है, हम अपने ऐक्ट (कृत्य) से जाहिर करेंगे कि सब एक हैं। हमें कोई वक्तव्य नहीं देना है कि सब एक हैं। हमारा कृत्य कहेगा कि सब एक हैं। तुम किसी गांव में जाओ तो मस्जिद में भी ठहर जाना, मंदिर में भी ठहर जाना, जहां तुम्हें मौका मिले ठहर जाना। तुम्हें हिन्दू बुलाये तो हिन्दू के घर खाना खा लेना, मुसलमान बुलाये तो मुसलमान के घर खाना खा लेना, ईसाई बुलाये तो उसके घर चले जाना।

(११) नव-संन्यास की छाया में समस्त धर्मों को विश्राम

और जल्दी ही मैं चाहूंगा कि नव-संन्यास में मुसलमानों को भी लाना है, ईसाइयों को भी लाना है और सिक्खों को भी लाना है। इस संन्यास के वृक्ष के नीचे सभी धर्मों के लोग आ जायें, इसकी मैं फिक्र में हूं। तुम जितने विनम्र रहोगे, उतना ही यह सरल हो जायेगा। और इसका तो तुम्हें पता ही नहीं है कि विनम्रता का आनंद कितना है, और अहंकार का दुःख कितना है। क्योंकि हम विनम्र कभी हुए ही नहीं इसलिए उसका हमें पता ही नहीं कि उसका आनन्द कितना है। जब तुम उसमें जिओगे तब तुम्हें पता चलेगा। तुम कल सुबह से ही फिकर करना कि **जहां भी जीवन में विनम्र होने का मौका मिले उसे तुम चूकना ही मत, उसे तुम फौरन ले लेना। झुकने का एक भी अवसर मत खोना,** फिर तुम्हारे आनन्द की कोई सीमा न रह जायेगी। और तुम्हें इतना सहयोग मिलेगा, और तुम्हें इतने साथी मिल जायेंगे जिसका हिसाब लगाना मुश्किल है।

(१२) धर्म—तर्क का विषय नहीं, भाव का विषय है

दूसरी बात, धर्म का बहुत गहरा संबंध तर्क से नहीं है, बुद्धि से भी नहीं है। मुझे दिन रात तर्क और बुद्धि की बात करनी पड़ती है, वह बहुत सिचुएशनल, परिस्थितिगत मजबूरी है। वह मजबूरी मैं तुम्हें कह दूं। वह मजबूरी यह है कि इस युग का जो विचारशील आदमी है, वह ऐसी किसी बात को सुनने को राजी नहीं है, जो तर्क और विचार से प्रमाणित न हो।

'धर्म तर्क और विचार से सम्बन्धित नहीं है, इसीलिए इस समय का जो विचारशील आदमी है वह धर्म से टूट रहा है, टूट गया है। जो विचार-हीन हैं वे धर्म के साथ रह गये हैं। विचारहीन होने से ऐसा नहीं है कि वह विचार के पार है। उसमें विचार की शक्ति ही नहीं है, वह विचार ही नहीं कर सकता। और धर्म विचार करने से भी आगे की चीज है। तो विचारहीन के साथ धर्म मर रहा है। बच नहीं सकता। उसके साथ। हर युग में वही चीज बचती है जो उस युग की बुद्धिमान प्रज्ञा को, उस युग की जो इंटेलिजेन्सिया है, उस युग का जो विचार-सम्पन्न वर्ग है उसकी स्वीकृत में होती है। वही चीज बचती है, दूसरी कोई चीज बचती नहीं है।

(१३) मेरा काम है: तर्क द्वारा बुद्धिमान-वर्ग में रुचि पैदा करना

तो मुझे निरंतर धर्म के लिए अत्यन्त विचार और तर्क से बात करनी पड़ रही है, और वह सिर्फ इसलिए करनी पड़ रही है, ताकि एक दफा तर्क और विचार से वह जो इंटेलिजेन्सिया (बुद्धिमान वर्ग) है वह उत्सुक हो जाय तो उसे निर्विचार में धक्का देना बहुत कठिन नहीं है। उसे हम राजी कर लेंगे, लेकिन वह मुझसे ही राजी हो सकता है, जब उसे इतना भरोसा आ जाय कि जहां तक उसका तर्क जाता है वहां तक तो मैं चलता ही हूं, उसके आगे भी तर्क को ले सकता हूं—जिस दिन उसे यह भरोसा आ जाय कि तर्क में मेरी कोई कमी नहीं है; यानी तर्क में मैं कोई कंजूसी नहीं करता, कोई बचाव नहीं करता, जहां तक वह चलता है उसके दो कदम आगे मैं तर्क में चलता हूं, उसी दिन वह इस ओर झुक सकेगा। फिर भी मैं उससे कहता हूं कि तर्क के आगे कुछ है, तो ही उसको बात खयाल में आ सकती है। लेकिन ऐसे धर्म का बहुत गहरे में तर्क या विचार से कोई संबंध नहीं है, यही मेरी मजबूरी है।

(१४) तुम तो भाव के द्वार से धर्म में डूबना

मेरी मजबूरी मैं तुम्हारी मजबूरी नहीं बनाना चाहता। तुमसे मैं कुछ और ही काम लेना चाहता हूं। मेरी मजबूरी तुम अपनी मजबूरी बना भी न पाओगे, उससे तुम अड़चन में पड़ोगे। तुम धर्म को तर्क और विचार की तरफ से पकड़ने की फिकर ही छोड़ दो। तुम उसे भाव की तरफ से ही पकड़ो। क्योंकि जिनको मैं तर्क और विचार से भाव तक लाऊंगा, उन्हें मैं तुममें डुबाऊंगा। तुमको तर्क और विचार नहीं पकड़ना है।

तुम्हें किसी से विवाद में भी नहीं पड़ना है, वह विवाद का काम तुम मेरे ऊपर छोड़ देना। उससे मैं निपट लूंगा, तुम उसमें पड़ना ही मत। उसमें तुम सिर्फ परेशान और पीड़ित हो जाओगे। उसमें तुम सिर्फ उपद्रव में पड़ोगे। तुम तो धर्म को जीना और तुम्हारा जीना ही किसी के लिए आकर्षण बन जाये तो वह उसे खींच लेगा।

(१५) कोई तर्क और विवाद करे, तो तुम नाचना और गाना

तुमसे तो **कोई तर्क करे तो तुम नाचना, तुमसे कोई विवाद करे तो तुम गीत गाना,** (संन्यासियों की गद्‌गद हंसी...) अपनी जिन्दगी से उत्तर देना तो ही तुम जीत पाओगे, अन्यथा तुम चिन्ता में पड़ जाओगे और तुम खुद की भी शान्ति खो दोगे। उनको तो तुम शान्त नहीं कर पाओगे, तुम खुद भी अशान्त हो जाओगे। **तर्क की तो मैं सिर्फ उसी को आज्ञा देता हूं जो तर्क को खेल की तरह कर सके, जो उसमें अशान्त न हो।** जिस दिन तुमसे कोई भी तर्क ऐसा कर सके जैसे कि वह उसकी मौज है, मजा है उससे उसे कोई झंझट नहीं है, तभी तुम तर्क में उतरना। यदि तर्क तुम्हारी चिन्ता बन जाये और विवाद तुम्हें परेशानी में डालने लगे तो मैं तुमसे नहीं कहूंगा कि तुम तर्क करो। तुम उसमें पड़ना ही नहीं, तुम्हें उसमें पड़ने की कोई जरूरत नहीं है।

और ध्यान रहे दुनिया में धर्म का प्रभाव कम होता है, इसलिए नहीं कि धर्म को तर्क देने वाले नहीं मिलते, बल्कि इसलिए कि धर्म को जीकर उत्तर देने वाले नहीं मिलते। वह कम पड़ते चले जाते हैं।

तुम्हें एक और दूसरे सेतु का उपयोग करना है। मैं जो कर रहा हूं उससे मैं मुल्क की और मुल्क के बाहर की जो इंटेलिजैंसिया (बुद्धिशाली वर्ग) है उससे तो निकटता बना लूंगा, लेकिन वही सब कुछ नहीं है। उससे भी बड़ा हिस्सा है जगत का, समाज का जिसको बुद्धि से कुछ लेना-देना नहीं है। तुम्हें मैं उसे भी आनंदित करने भेजना चाहता हूं, तुम उसे भी आनंदित कर देना।

(१६) तुम्हारी मौज, आनंद व अहोभाव का संक्रामक बनना

तो तुम्हारी जो एक स्पष्ट दिशा है, वह यह है कि तुम इतने मौज से जियो और इतने आनन्द से जियो कि जो भी करो वह इतना रसपूर्ण हो कि दूसरे के मन में लोभ आ जाय। (संन्यासियों की प्रसन्न हंसी...) उसे लगे कि ऐसी भी एक चीज है! तुम उसे मत कहना कि हम तर्क देते हैं, हम तुम्हें समझाते हैं। समझाने का काम ही नहीं है तुम्हारा। तुम तो कहना कि हम

ऐसे जीते हैं और मजे से जीते हैं। हम नहीं कहते कि ईश्वर है, हम इतना ही कहते हैं कि हमारा होना एक आनंद है। और उस आनन्द में हम किसी को धन्यवाद देना चाहते हैं। हम किसको दें! हम सब जगत को ही धन्यवाद देना चाहते हैं। यह जो हम गीत गा रहे हैं, यह किसी मंदिर में बैठे भगवान के लिए नहीं है, सब में जो व्याप्त है उसके लिए है। उसको हम धन्यवाद दे रहे हैं।

तुमसे लोग पूछेंगे कि तुम किस धर्म के हो? तो तुम कहना कि सिर्फ धर्म के हैं, क्योंकि 'किस धर्म' के लोग बहुत दिन रह चुके। उससे कुछ हुआ नहीं। अब हम एक और प्रयोग करते हैं, हम सिर्फ 'धर्म मात्र के' हो जाते हैं। या सब धर्म हमारे हैं और सब धर्मों के हम हैं। हजार प्रश्न तुमसे लोग पूछेंगे, तुम प्रश्नों के उत्तर सदा सीधे देना। तुम्हारे उत्तर आर्गुमैंट्स (तर्क) नहीं होने चाहिए। तुम्हारे उत्तर सिर्फ स्टेटमैंट्स (वक्तव्य) होने चाहिए। इसका फर्क समझ लेना।

एक तो उत्तर होता है जो दलील होता है। दलील का मतलब होता है कि दूसरा जो कह रहा है वह गलत है और हम उसे सिद्ध करेंगे कि गलत है। स्टेटमैंट का मतलब और होता है। वक्तव्य का मतलब होता कि हमें पता नहीं कि गलत-सही क्या है, हम जो जी रहे हैं वह यह है, और हम उसमें आनंदित हैं। अगर तुम अपने वक्तव्य में आनंदित हो तो भगवान को धन्यवाद दो और तुम आनंदित रहो। और अगर तुम नहीं हो तो हमारे वक्तव्य में भी आकर देख लो। हम आनंदित हैं।

(१७) तर्क और विवाद को नहीं—आनंद को बनाना अपना आधार

मेरा मतलब समझे न कि वक्तव्य का मतलब क्या है! वक्तव्य आर्गुमैंट नहीं है, दलील नहीं है। हम यह नहीं कहते कि हम सिद्ध करते हैं, हम इतना ही कहते हैं कि हम मजे में हैं। तुम अगर मजे में हो तो खुशी की बात है। हमें तुम्हारे मजे से जरा भी एतराज नहीं हैं। तुम अपने मजे में रहो। किसी दिन हमारा मजा खो जायेगा तो हम तुम्हारे मजे में सम्मिलित हो जायेंगे। अगर तुम मजे में नहीं हो तो व्यर्थ की दलीलों में मत पड़ो। हमारे मजे में सम्मिलित होकर देखो, तुम्हें भी मिल जाय तो ठीक, अन्यथा हम बुलाते नहीं हैं, बुलाने का कोई कारण नहीं है।

इतनी सरलता से ही तुम अगर जाओगे जगत् में तो तुम व्यापक काम कर पाओगे। इसका मतलब यह है कि जो मैं बोलता हूं, जो मैं कहता हूं, उस चक्कर में तुम बहुत मत पड़ना। वह तुम्हारे लिए है उसे तुम समझ लेना, लेकिन तुम दूसरे के लिए उसकी फिकर में मत पड़ना। वह तुम्हारे लिए सिर्फ मानसिक क्लेश बन जायेगा। और तुम्हारा मानसिक क्लेश किसी को भी प्रभावित करने वाला होने वाला नहीं है। तुम्हारी मानसिक प्रफुल्लता प्रभावित करेगी। इसका तुम प्रयोग करोगे तो तुम्हें फर्क खयाल में आ जायेगा फौरन। तुम हंसना, तुम्हारे विरोध में कोई बोले तो। और तुम कहना कि आप जो विरोध में बोलते हैं, ठीक ही बोलते होंगे, बाकी हम इतने आनंद में हैं कि हम उस आनंद को किसी तर्क के आधार पर छोड़ने की कोई मर्जी नहीं रखते। उससे बड़ा आनंद तुम हमें बताते हो तो हम चलने को राजी हैं।

कोई कहता हो कि ईश्वर नहीं है तो उससे पूछना कि अगर ईश्वर नहीं हो तो हमारा आनंद कैसे बढ़ जायेगा, वह हमें समझा दो तो हम चलने को राजी हैं। कोई कहे कि यह भजन-कीर्त्तन बेकार है तो कहना कि हम बिलकुल बन्द करने को राजी हैं, लेकिन जो नहीं कर रहा है वह आनंद में हो तो। उससे कहना कि तुम बिना भजन-कीर्त्तन के यहां खड़े होकर दिखा दो, हम भजन-कीर्तन करके दिखा देते हैं। और जो आनंदित दिखे उसको चुन लेंगे।

(१८) दलील एक खेल बन जाय तभी करना

मेरा मतलब समझ रहे हो न, मेरा मतलब कुल इतना है कि तुम एक वक्तव्य बनना—नॉन-अरिस्टोटैलियन। नो-आर्गूमैंट, कोई दलीलबाजी न हो उसमें। दलीलबाजी के बड़े खतरे हैं। पहला खतरा तो यह है कि दलीलबाजी सिर्फ उस आदमी को करनी चाहिए जिसे दलील खेल हो। जिसको उससे कहीं कोई अड़चन पैदा नहीं होती हो, जिससे कोई चिन्ता उसे पैदा नहीं होती हो। किया और गया, जैसे पानी पर एक लकीर होती है। उसे फिर कोई मतलब नहीं है, कोई लेना-देना नहीं है पीछे लौटकर। ऐसे आदमी की दलील ही प्रभावी होती है, इस पर ध्यान रखना। क्योंकि दूसरे आदमी को यह पकड़ जाता है कि वह आदमी सिर्फ दलील नहीं दे रहा है, दलील देने में बहुत आनंदित है। यह उसकी कोई तकलीफ नहीं है।

और दूसरी बात यह है कि दलील का अलग मैकेनिज्म है। उसकी अलग व्यवस्था है। उसकी अलग ट्रेनिंग है। वह वर्षों की ट्रेनिंग है, वह एक

दिन का काम नहीं है। प्रफुल्ल तो तुम अभी हो सकते हो, तर्कयुक्त तुम्हें होने में वर्षों लग जायंगे। क्योंकि प्रफुल्लता क्षण में खिल सकती है। इसका फर्क समझ लेना।

(१९) मिलन—मेरे तर्क और तुम्हारे नृत्य का

तुम चाहो तो अव्यवस्थित ढंग से नाच सकते हो, इसमें कोई तुम्हें दुनिया में रोकने को नहीं है, लेकिन अव्यवस्थित ढंग से तर्क करोगे तो बेकार फंस जाओगे। उसमें तो व्यवस्था चाहिए। और उसकी व्यवस्था का जाल भारी है। मुझे पता है कि उसकी व्यवस्था का जाल कितना लम्बा है। उस जाल में अगर मैं तुम्हें डालूं तो तुम्हारी पूरी जिंदगी निकल जायेगी। उससे न तुम किसी को राजी कर पाओगे और न तुम कुछ कर पाओगे।

तुम्हें तो मैं तर्क से बिलकुल ही विमुक्त करता हूं। तर्क-वर्क में तुम पड़ना ही मत। और इससे तुम मेरी जो तर्क की व्यवस्था है उसमें सहयोगी बनोगे, क्योंकि अगर मेरी तर्क की व्यवस्था के पास तुम्हारे नृत्य भी दिखाई पड़ते हों तो मेरा तर्क सिर्फ तर्क नहीं रह जाता, उसके साथ नाच भी हो रहा है। (संन्यासियों की जोर से हंसी व तालियां...) तो इसको खयाल में रखना।

(२०) अपने-अपने गांव में मित्रों को इकट्ठा करो

संन्यासियों के लिए काम बहुत अधिक हैं, कई तरह के हैं। एक तो जहां भी तुम हो, जल्दी से वहां मित्रों के छोटे-छोटे मण्डल बनाने शुरू करो। एक गांव में, एक संन्यासी बहुत कारगर नहीं होता, क्योंकि कुछ चीजें हैं जो सिर्फ समूह में कारगर होती हैं, एक से नहीं होतीं। अगर एक संयान्सी सड़क पर नाचेगा तो पागल मालूम पड़ेगा, और पचास नाचेंगे तो नहीं मालूम पड़ेंगे। क्योंकि जगत् संख्या से जीता है। अगर तुम्हें अकेले मैं भेज दूं सड़क पर नाचने तो तुम पागल मालूम पड़ोगे। लेकिन जब पचास जाते हैं तब फर्क समझते हो क्या होता है! देखने वाला अकेला होता है, तुम पचास होते हो। देखने वाला हमेशा अकेला है, क्योंकि दो आदमी इकट्ठे नहीं देख सकते। दो आदमी इकट्ठे नाच सकते हैं। समझे न फर्क! देखने वाले कितने ही खड़े हों, हजार आदमी खड़े हों, लेकिन हर देखने वाला अकेला होता है। नाचने वाले पचास होते हैं। इस पचास से एक की टक्कर होती है तब वह समझता है कि मैं ही पागल हूं। (संन्यासियों की जोर से हंसी...!) इसलिए तुम गांव-गांव में जहां-जहां हो, वहां-वहां ग्रुप (मित्रों के समूह) को बड़ा करने में लग जाओ।

(२१) पुराने संन्यास की समस्त जटिलताओं का निराकरण—नव-संन्यास में

नव-संन्यास में बड़ी सुविधा है। लेकिन, पुराना संन्यास जो था वह भारी व्यवस्था में से आता था। कहीं पांच वर्ष की, कहीं दस की प्राथमिक सीढ़ियां थीं। अगर दिगम्बर जैनियों का संन्यासी होना हो तो पांच सीढ़ियां पार करना पड़ती हैं। पांच सीढ़ियां पार करने में अंदाजन बीस से चालीस वर्ष लग जाते हैं। यानी अगर दस साल का लड़का संन्यासी हो तो वह साठ साल की अवस्था में जाकर उनकी आखिरी संन्यास की सीढ़ी पर खड़ा हो पाता है। इस पचास साल में उसके भीतर जो भी रागयुक्त है, जो भी संवेदनयुक्त है वह सब मर जाता है। इतनी लम्बी है—यह ट्रेनिंग।

मैंने तो संन्यास को बिलकुल खेल ही कर दिया है। तुम अभी ले लो। तुमसे यह भी नहीं कहता कि तुमने दुबारा सोचा कि नहीं। इसकी भी कोई बात नहीं है। क्योंकि तुम्हें गंभीर मैं बनाना नहीं चाहता हूं। वह तुम्हारा निर्णय है। तुम किसी का कुछ बिगाड़ नहीं रहे हो, बना नहीं रहे हो, वह निपट तुम्हारी निजी बात है। तुम्हारे गैरिक कपड़े पहनने से यह जगत कहीं खिसका नहीं जा रहा है, कुछ हुआ नहीं जा रहा है। फिर मैं कहता हूं कल तुम्हें लगे तो तुम वापस लौट जाना। कोई जरूरी नहीं है।

पुराने संन्यास में इतनी लम्बी व्यवस्था इसीलिए थी, ताकि वापस न लौटा जा सके। अब सोचें कि जो आदमी एक जगह में पचास साल 'एप्रेंटिस' (परीक्षार्थी) रहा हो— पचास साल, तीस साल, पच्चीस साल जिस आदमी ने सिर्फ प्रवेश का शिक्षण लिया हो, वह लौट सकता है ? लौटते वक्त उसको लगेगा कि पच्चीस साल सिर्फ शिक्षण है प्रवेश का ! जिन्दगी तो चली गई उसकी सीढ़ियां चढ़ने में, अब मंदिर में पहुंच पाया, अब मंदिर से लौट कैसे सकता हूं ! पच्चीस साल की जिन्दगी जो खोई है उसने, वही मार्ग में खड़ी हो जाती है, अब वह वापस नहीं लौट सकता।

असल में इतने लम्बे-लम्बे संन्यास की जो ट्रेनिंग थी, वह न लौट सके कोई वापस इसका इंतजाम था। और कुछ मामला नहीं है। संन्यासी तो कोई इसी वक्त हो सकता है। वह तो सिर्फ एक डिसीजन (निर्णय) है तुम्हारे मन का, लेकिन इतनी व्यवस्था सिर्फ इसीलिए की थी कि वापस लौटना फिर असंभव हो जाय, फिर कोई उपाय न बचे।

नव-संन्यास में तो जो भी राजी होता है, उसे तत्काल संन्यास दे देना है, तुम सब अधिकारी हो। उसको राजी कर लेना, मुझे खबर कर देना—उससे कहना, जाओ अब तुम यात्रा पर।

तुम्हारे ऊपर और कोई बंधन नहीं है सिवाय तुम्हारे अपने विवेक के... उसको बंधन नहीं कहा जा सकता। तुम पर और कोई डिसिप्लिन (नियम) नहीं है। तुम्हारे **कपड़े**, तुम्हारी **माला** वह कोई डिसिप्लिन नहीं है, वह भी **उस खेल का हिस्सा** है जिसमें यूनिफार्म की जरूरत पड़ती है और वे कुछ नहीं हैं।

(२२) समूह-मनोविज्ञान का आत्म-जागरण में उपयोग

चूंकि उसमें समूह का उपयोग करना है, इसलिए बिना यूनिफॉर्म के समूह नहीं बनता। अगर तुम पचास आदमी अलग-अलग कपड़ों में सड़क पर खड़े हो तो तुम एक-एक खड़े हो। अगर तुम पचास आदमी एक से कपड़े पहनकर खड़े हो तुम इकट्ठे पचास खड़े हो। तुम्हारे कपड़े तुम्हें इकट्ठा कर देंगे, तुम्हें जोड़ देंगे और समाज के लिये उपयोगी होंगे। और उनसे तुम्हारे लिए सदा स्मरण बना रहेगा। तुम्हें चौबीस घंटे स्मरण रहेगा कि तुम संन्यासी हो। छोटी घटना नहीं है यह। **आदमी की पूरी की पूरी व्यवस्था बदल जाती है बहुत छोटी-सी घटना से**—एक दफे उसे रिमेंबरिंग भर होनी शुरू हो जाए।

तुम्हारे कपड़े, माला वे तुम्हारे स्वयं के स्मरण के लिए हैं, और समाज भी तुम्हें स्मरण रखेगा। यह दोनों स्मरण तुम्हारे विवेक को जगाने के लिए प्रेरणा का काम करते रहेंगे। प्रेरणा का काम ही कर सकते हैं। जगाना तो तुम्हें है ही। अब तुम्हें अपने ही विवेक से जीना है। और जिम्मेदारी तुम्हारी बढ़ जाती है, क्योंकि तुम एक बड़ा काम करने का खयाल अपने में और अपने से बाहर भी तुम्हें पकड़ा है।

(२४) संन्यास—आत्म-कल्याण और लोक-हित के लिए

यह भी ध्यान रखना कि संन्यास आम तौर से अब तक निजी काम था, यह 'सेलफिश' (स्वार्थपूर्ण) काम था बहुत, बस अपना ही था। दूसरे से कुछ लेना-देना नहीं था। मैं जिस संन्यास की दिशा में तुम्हें ले जा रहा हूं वह सिर्फ तुम्हारा अपना काम नहीं है। क्योंकि मेरी अपनी समझ यह है कि इस जगत में जो भी श्रेष्ठतम फलित होता है वह सदा संबंधों में फलित होता है। तुम भी खिलते हो तो दूसरे के अंतर-संबंधों में खिलते हो। अकेले तुम जरूर

भीतर हो, लेकिन अकेले होने का कोई आकार नहीं बनता। आकार तो सब तुम्हारे दूसरों के साथ होने से बनता है। तुम सच बोलते हो, झूठ बोलते हो, अकेले में उसका कुछ अर्थ नहीं है। दूसरों के साथ सब बनना शुरू होता है। ईमानदार हो, बेईमान हो, तुम प्रसन्न हो कि उदास हो, तुम क्या हो ? इसकी जो डेफनीशन (परिभाषा) है, इसकी जो सीमा रेखा है वह दूसरे बनाते हैं उनसे तुम निर्मित होते हो। यह **संन्यास हमारा सिर्फ निजी मामला नहीं है। निजी तो है ही, समूहगत भी है। व्यक्तिगत तो है ही, समष्टिगत भी है।**

तो तुम अकेले अपनी ही साधना पर निकले हो इतना ही नहीं है। तुम अपने साथ-साथ समाज की साधना पर भी निकले हो, क्योंकि समाज ही तुम्हें पैदा करता है, समाज ही तुम्हें बड़ा करता, समाज में तुम जीते हो, समाज में तुम मरते हो। तुम भी समाज हो। इसलिए बिलकुल अकेले होने की बात बिलकुल बेमानी है। अपने को बिलकुल तोड़ा नहीं जा सकता। सब जुड़ा है।

(२४) संन्यासी के अनुकूल विवेकपूर्ण व्यवहार

इसलिए अपने विवेक से तुम्हें पूरे वक्त खयाल रखना है कि तुम कैसे उठते हो, कैसे बैठते हो, क्या करते हो। वह सब तुम्हें खयाल में रखना है। खयाल में रखने का मतलब यह नहीं है कि तुम उससे गंभीर हो जाओ और तुम उसे पैटर्नाईज (ढांचाबद्ध) कर लो। मैं तुमसे नहीं कहूंगा कि तुम होटल में बैठकर खाना मत खा लेना, मैं तुमसे नहीं कहूंगा कि तुम सिनेमा मत चले जाना। नहीं, तुम सिनेमा भी जा सकते हो, तुम होटल में भी खाना खा सकते हो, लेकिन फिर भी संन्यासी होकर तुम होटल में भी और तरह से प्रवेश कर सकते हो। यह बड़ी अलग बात है। होटल में प्रवेश न करना उतना कठिन नहीं है, **संन्यासी की तरह होटल में प्रवेश करना बिलकुल दूसरी बात है।** तुम सिनेमा में भी जाओ तो भी तुम संन्यासी हो तो **तुम संन्यासी की तरह सिनेमा में प्रवेश करना।** असल में संन्यासी कमजोर था इसलिए वह नहीं गया था। तुम जाना, तुम्हें लगे तो जाना, तुम्हें आनन्दपूर्ण हो तो जाना। तुम्हें न लगे तो न जाना, लेकिन जहां भी तुम जाओ वहां भी तुम संन्यासी हो वैसे ही तुम जाना। 'संन्यासी की तरह' का मतलब है तुम साधारण नहीं हो अब। तुम्हारे पास एक विशेष व्यक्तित्व है। तुम्हें चारों तरफ लोग देख रहे हैं। जब तुम साधारण हो तब तम्हें कोई नहीं देखता।

(२५) तुम्हारी उछल-कूद में भी एक संन्यासी की गरिमा हो

प्रश्न : हम उछलते-कूदते हैं तब लोग देखते हैं ?

भगवान श्री : उछलने-कूदने में मुझे कोई हर्जा नहीं है, लेकिन संन्यासी की तरह उछना-कूदना। उछलें, कूदें—मुझे पसंद है। उछलना-कूदना मुझे पसंद है। पर उसमें भी तुम जानना कि तुम्हें लोग देख रहे हैं। उनके देखने का कोई प्रश्न नहीं है, उनसे कोई भयभीत नहीं होना है। लेकिन जिन लोगों के बीच तुम्हें बड़े काम करना है, जिन लोगों के बीच तुम्हें और बहुत कुछ करना है, उनके मन में तुम्हारे प्रति एक आनन्द का भाव, एक अहोभाव बनता जाये, पर गंभीरता से नहीं यह फर्क खयाल में ले लेना। ऐसा न लगने लगे कि तुम भारी गंभीर हो। ऐसा नहीं है। तुम्हारे प्रति एक अहोभाव बने, कि इतना पुलकित भी व्यक्तित्व है, इतना आनंदित भी। फिर भी एक अनुशासन है उस आनंद में, फिर भी एक व्यवस्था है उस आनंद में। वह तुम्हारा आकर्षण बने। वह लोगों को खीचेगा तुम्हारे पास। फर्क खयाल में ले लेना।

पुराना संन्यासी भी खयाल रखता था कि लोग देख रहे हैं, लेकिन इसलिए कि लोग उसका आदर करें। यह मैं तुमसे नहीं कह रहा कि लोग तुम्हारा आदर करें। लोग तो तुम्हारा आदर करें, न करें यह सवाल नहीं है बड़ा। नहीं, लोग तुम्हें देखकर आनंदित हो। इन दोनों में बड़ा फर्क है।

(२६) आदर की नहीं—फिकर करना आनंद की

ध्यान रखना कि आदर हम उसका करते हैं जिसे देखकर हम आनंदित नहीं होते, बल्कि थोड़े बेचैन हो जाते हैं। इसलिए आदर करने वाला आदमी चौबीस घंटे कमरे में रहे तो हम कहेंगे : अब बस, बहुत हो गया। इस कमरे में हम नहीं घुस सकते। क्योंकि आदर जिसका हमें करना है उसके साथ थोड़ी बहुत देर चल सकता है। घडी, आधा घड़ी हम आदर की व्यवस्था में रह सकते हैं, फिर उसके बाद वह घबड़ाने वाला हो जाता है। लेकिन जिसके साथ हम आनंदित होते हैं उसके साथ हम चौबीस घंटे रह सकते हैं। उसका साथ कभी घबड़ाने वाला नहीं होता।

तो तुम्हें आदर मिले यह तुम्हें ध्यान में नहीं लेना है। यह तो अहंकार है, इससे कोई प्रयोजन नहीं है। लेकिन तुम कहीं से भी निकलो तो खुशी की एक लहर लोगों के मन में छोड़ देना। बस इतना तुम्हारा काम है।

तुम्हें कुछ पूछना हो तो पूछ लो।

प्रश्न : संन्यास लेने में घर वालों से बगावत हो जाती है। इस व्यवहार को क्या आप न्यायसंगत मानते हैं ? और यदि परिवार के सदस्यों को हमारे संन्यास से बहुत तकलीफ होवे तो संन्यास छोड़ देना क्या उचित होगा ?

(२७) घर वाले कम से कम दुःखी हों इसका खयाल रखना

भगवान श्री : दो बातें खयाल में ले लेना चाहिए। एक तो यह कि जहां तक बने कोई दुःखी न हो इसका खयाल रखना चाहिए। तुम अपनी सारी कोशिश कर लेना कि घर में रहकर, बिना किसी को दुःखी किये, तुम्हारा संन्यास फलित हो पाये, लेकिन किसी के दुःखी होने के लिए अगर कोई उपाय ही न बचे तो इसके लिए संन्यास नहीं छोड़ा जा सकता, क्योंकि तब तुम खुद दुःखी होओगे। अगर तुम्हें ऐसा लगे कि संन्यास छोड़ने में इतना दुःखी नहीं होता, जितना संन्यास लेने से घर के लोग दुःखी होते हैं तब मैं दुःखी होता हूं, तब तुम मत लेना। लेकिन तुम्हें ऐसा लगे कि घर के लोग तो दुःखी होते हैं, राजी नहीं हैं, लेकिन घर के लोगों के दुःखी होने से जितना मैं दुखी होऊंगा उससे ज्यादा दुखी संन्यास के छोड़ने से हो जाऊंगा, तो मैं तुमसे कहूंगा कि संन्यास ले लो। क्योंकि इस जगत में एब्सोल्यूट (परम) चुनाव नहीं है, रिलेटिव (सापेक्ष) चुनाव है।

दूसरों के दुःख का ध्यान रखना, लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि अपने दुःख का ध्यान ही मत रखना, क्योंकि तुम भी हो। कोई दूसरे ने ठेका नहीं ले लिया है दुःखी होने का। ध्यान रखना बिल्कुल जरूरी है कि जहां तक बन सके वे सुखी हों इस भांति। अगर ऐसा लगे कि असंभव है, वे सुखी हो नहीं सकते, और तुमने अपनी सारी कोशिश कर ली, कोई उपाय नहीं है, अब तो उन्हें दुःखी ही रहना पड़ेगा तो मैं कहूंगा, तुम संन्यास ले लो। लेकिन, तुमने अगर सारी कोशिश कर ली है तो घर के लोग ज्यादा देर दुःखी नहीं रहेंगे। क्योंकि उन्हें यह भी तो दिखाई पड़ेगा कि तुमने सब कोशिश की है।

और संन्यास लेने के बाद भी तुम कुछ उनके दुश्मन मत हो जाना, भले ही वे तुम्हारे दुश्मन हो जायें। तुम आना-जाना जारी रखना, तुम्हारा सब संबंध जैसा था वैसा जारी रखना। तुम उनसे कहते रहना कि आप नहीं रहने दे रहे हो इसलिए हम घर में नहीं रह रहे हैं, हम तो रहने को राजी हैं। और हममें कहीं भी कोई फर्क नहीं हुआ है। कहीं भी कोई फर्क हुआ है तो वह हमको बतायें। हम वैसे ही रहेंगे जैसे कल तक थे। लेकिन अगर हमारे संन्यास

से हममें फर्क नहीं हुआ, आप में फर्क हो गया और आप हमारा रहना बर्दाश्त नहीं कर सकते हैं तो आपको दुःख न दें इसलिए हम बाहर जा रहे हैं।

(२८) धीरे-धीरे परिवार के सदस्यों की चिंता का दूर होना

लड़ाई अपनी तरफ से नहीं लेना। अपनी तरफ से सदा ही मैत्री रखना। उनकी लड़ाई थोड़े दिन में मर जायेगी, क्योंकि कोई भी लड़ाई एक तरफा ज्यादा दिन नहीं चलती। फिर, वे तुम्हें प्रेम ही करते हैं इसलिए चिंतातुर हैं। उनकी चिंता एकदम गलत नहीं है। और संन्यास के नाम से वे जो समझते हैं वह कुछ और है। जब वे तुम्हें देखेंगे कि वैसा संन्यास नहीं है, कुछ और ही बात है तो वे पिघल जायेंगे। वे तुम्हें प्रेम करते हैं इसलिए विरोध में हैं। लेकिन जब देखेंगे कि कोई नुकसान ही नहीं हुआ है—जिस नुकसान के डर से वे विरोध में हैं तो विरोध गिर जायेगा। उसकी चिंता लेने की जरूरत नहीं है। संन्यास घर में ही रहकर लेना, न बन सके तो ही आश्रम में जाना। और फिर भी घर वाले कल वापस बुलायें कि बनता है, तुम आ जाओ संन्यासी रहते। तो तुम घर आ जाना। उसमें कोई अड़चन नहीं है।

थोड़ा विरोध आयेगा स्वाभाविक है, लेकिन दो वर्ष का है। जब हजारों लोग होंगे तो विरोध गिरता जायेगा। अभी आनंदमूर्ति के पिता मुझसे क्षमा मांग गये हैं। शुरू में बहुत विरोध आया था। कपड़े छीन लिये थे। सब किया, सब तरह से दबाया। अभी माफी मुझसे मांग गये हैं कि मुझे माफ कर देना, आपके लिए कुछ गलत बातें कह दीं गुस्से में, वह भूल हो गई है। और किसी के लिए भी कही हों तो उन सबसे भी मैं माफी मांगता हूं। कितनी देर लगेगी! अगर तुम ठीक हो तो कितनी देर लगेगी, स्थिति के सुलझने में! उसका भरोसा रखना।

प्रश्न : संन्यासियों के लिए कोई अलग शिविर आप लेने वाले हैं और उनका कोई प्रशिक्षण भी आप करवाने वाले हैं?

भगवान श्री : जल्दी ही सब संन्यासियों के लिए एक अलग शिविर रखने का खयाल है। एक तो वह करना ही है और अभी तुम वहां आजोल में जो संन्यासी हैं वे और बाहर जो संन्यासी हैं वे, सात-आठ दिन का एक शिविर तो अभी तुम ही पहले आजोल के विश्वनीड़ आश्रम में ले लो। वह शिविर तो तुम्हारे नृत्य, तुम्हारे गीत, इस सबके अभ्यास के लिए हो, उसमें मेरी उपस्थिति जरूरी नहीं है। वह तुम्हीं ले लेना, ताकि एक सात दिन के शिविर में तुम्हारी थोड़ी-सी समझ बढ़ जाये। व्यवस्था में बांध नहीं लेना है

अपने को, लेकिन एक व्यवस्था का तुम्हें बोध हो जाये। फिर तो मेरा आगे से खयाल यह है कि जहां-जहां भी मेरी मीटिंग (प्रवचन माला) होगी (और अब सब जगह मेरा खयाल यह हो गया है कि नौ दिन से कम मीटिंग कहीं भी लेना नहीं है। तो अभी एक वर्ष तो गीता ही पूरा करने में लगेगा।) वहां-वहां संन्यासी मेरे पहुंचने के तीन दिन पहले पहुंच जायेंगे और पूरे गांव में अपना संदेश गुंजा देंगे। और मेरे लौटने के तीन दिन बाद तक वे रुकेंगे। तीन दिन फिर गांव में धुन लगा देनी है। साहित्य भी पहुंचा देना है, धुन भी पहुंचा देनी है। मैं ६ दिन रहूंगा तुम १५–१६ दिन रहना।

(२६) संन्यास की धुन गांव-गांव गुंजा देनी है

और अब तुम्हें गांव-गांव भेजना शुरू करूंगा। कभी पूरी मंडली एक चक्कर लगा आयेगी, साहित्य दे आयेगी, समझा भी आयेगी।

और यह खयाल रखो कि हमारे मुल्क का जो मानस है उसका पूरा उपयोग करना है। जो बीज हमें बोने हैं उसमें मुल्क की भूमि का पूरा उपयोग करना है। गांव में कृष्ण से प्रेम है तो वहां कृष्ण के गीत गाओ, गांव मुसलमानों का है तो सूफियों के गीत गाओ। वह सब सीखना पड़ेगा जो कि बहुत आनंद-पूर्ण होगा। गांव ईसाइयों का है, तो कोई बात नहीं, जीसस के गीत गाओ। यह सब तैयारी तुम्हें करनी है।

जैन, हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, सिक्ख, कम से कम इन पांच धर्मों को तो फिलहाल समेट लेना है, बाद में अन्य धर्मों का खयाल ले लेंगे। इन सबके दो-दो चार-चार गीत भी तैयार कर लेने हैं। फिर तो मैं अनेक लोगों को तुम्हारे पास भेजूंगा—कोई सूफी भेजूंगा, वह तुम्हें दरवेश नृत्य सिखा जायेगा... ..... और जो भी सीखने जैसा मिल जाय वह सीखना। जल्दी ही सब किस्म के संन्यासी-साधु आ जायेंगे। कोई नाच, कोई गाना, कोई नाटक... वे सब तुम्हें सिखायेंगे। (संन्यासियों द्वारा आनंद से तालियां बजाना व हंसना)

(३०) अभी संघर्ष में नहीं, सृजनात्मक कार्य में लगो

प्रश्न : सामाजिक अन्याय व शोषण से लड़ने के लिए नव-संन्यासी क्या करेगा ?

भगवान श्री : अभी तुम समाज के अन्याय की फिकर छोड़ दो। अभी तो तुम समाज में धर्म को पहुंचाने की फिकर करो, वही समाज के अन्याय को तोड़ने का पॉजीटिव (विधायक) उपाय है। अन्याय इसीलिए है न, क्योंकि

धर्म का अभाव है। धर्म को तुम पहुंचाने की फिकर करो। अभी तुम अन्याय की फिकर छोड़ो। वह आगे की बात है। जब तुम्हारे पास एक बड़ा वर्ग होगा, तब हम तोड सकेंगे वह सब भी। अन्याय के खिलाफ भी किसी दिन तुम्हें लड़ाया जा सकता है, लेकिन उसकी ताकत इकट्ठी होनी चाहिये तभी वह हो सकता है।

लड़ाया जा सकता है बराबर। इसमें कोई अड़चन नहीं है। अब समझो जैसे कि किसी गांव में अगर कोई अन्याय हो जाये तो जिस दिन हमारे पास दस हजार संन्यासी होंगे, तो हम उन्हें लेकर उस पूरे गांव पर हमला ही बोल देंगे। पर यह सब बात तुम्हारे पास शक्ति हो जाये उसके बाद सोचने की है। और तब हम अन्याय नहीं होने देंगे। पर अभी तो कुछ नहीं कर सकते हैं हम। नहीं कर सकने की हालत में कुछ करने से व्यर्थ ही ताकत व्यय होती है, उसमें कुछ लेना-देना नहीं होता है।

तो अभी तो शक्ति बढ़ाओ। अभी तो सब कुछ पॉजीटिव (विधायक) रखो। अभी निगेटिव (निषेधात्मक) कुछ भी नहीं रखना है। इन सबकी अभी कोई चिंता नहीं लेनी है।

वह है, दुखद है। लेकिन जब तक हम शक्ति इकट्ठी नहीं कर लेते तब तक उससे लड़ना नहीं है।

(३१) नव-संन्यासी विवाह कर सकता है

प्रश्न : संन्यासी क्या विवाह कर सकता है ?

भगवान श्री : बिलकुल कर सकता है। क्योंकि संन्यास को इतनी बड़ी बात मानता हूं मैं कि विवाह, लग्न आदि बिलकुल छोटी बातें हैं। यह ऐसा ही है जैसे कि कोई आदमी पूछे कि संन्यास के बाद मैं दातौन कर सकता हूं क्या ! (संन्यासियों की हंसी का गूंज उठना) नहीं, उसका कोई मूल्य नहीं है इतना। उसको इतना महत्वपूर्ण (सिग्नीफिकेंट) बना लिया है हमने, इसलिए हमको ऐसा लगता है। दातौन की बात पर हमको हंसी आती है, लेकिन जैन साधु साध्वियों के लिए दातौन करना भी एक बड़ी समस्या है। जैन संन्यासी दातौन नहीं कर सकता है, नहा भी नहीं सकता है। तो जैन संन्यासी पूछता है कि संन्यास के बाद क्या हम नहा सकते हैं ? (संन्यासियों की हंसी की एक गूंज) बस इतना ही मामला है।

प्रोटेस्टेन्ट फकीर शादी करता है तो वहां इस सम्बन्ध में कोई प्रश्न खड़ा नहीं होता, कैथोलिक फकीर करे तो उठता है, क्योंकि शादी करने की सख्त मनाई है।

यह संन्यासी की अपनी बात है। यदि उसे लगता है कि शादी से उसके मन में परमात्मा के प्रति ज्यादा अहोभाव व धन्यवाद देने की सुविधा का जन्म होता हो तो कर ले। और अगर शादी सिर्फ कलह और उपद्रव बनती हो तो न करें।

यह उनकी निजी बात है। इससे हमें कुछ लेना-देना नहीं है। हमें कोई बाधा नहीं है। हम सब उसकी शादी में आनंद से नाचेंगे। (संन्यासियों की ठहाके की हंसी का गूंज उठना) यानी उसका मतलब यह हुआ कि उस संन्यासी के जीवन में एक नया डायमेंशन (आयाम) और बढ़ गया...(हंसी... हंसी...हंसी...) "शादीशुदा-संन्यासी"... (हंसी...हंसी...हंसी...) इससे संन्यासी में कुछ फर्क नहीं पड़ता है।

हम कोई बाधा ही नहीं डालना चाहते। हम संन्यास को इतना परम (अल्टीमेट) समझते हैं कि उसमें कोई भी क्षुद्र बात को बीच में बाधा मानना संन्यास को बहुत नीचे उतारना है। यह सब इतनी छोटी बातें हैं कि इनकी फिकर ही करने की जरूरत नहीं है। हम फिकर ही नहीं करेंगे इसकी। शुरू में कठिन पड़ेगा क्योंकि हमारे मुल्क में लम्बे समय से इस सम्बन्ध में एक धारणा बनी हुई है। लेकिन धीरे-धीरे सब टूट जायेगा।

प्रश्न : संन्यासी विभिन्न धर्मों का अध्ययन कर सकता है ? और संन्यासी आश्रम में किस ढंग से रहेगा ?

भगवान श्री : बिलकुल कर सकता है। लेकिन, वह अपनी-अपनी रुचि की बात है। लेकिन ध्यान सबको करना है। क्योंकि किसी भी तरह का आदमी हो उसे ध्यान जरूरी है। बाकी सब रुचि की बात है। किसी संन्यासी को अध्ययन रुचिकर हो तो वह अध्ययन करे, किसी को बागवानी रुचिकर हो तो वह बागवानी करे आश्रम में, किसी को हारमोनियम बजाना रुचिकर हो तो वह हारमोनियम बजाना सीखे। **वह जो निजी समय बचता है संन्यासी के पास, उसके उपयोग का चुनाव संन्यासी पर छोड़ देना है।**

(३२) संन्यासी का स्वावलम्बी आश्रम जीवन

प्रत्येक संन्यासी आश्रम में कम से कम चार घंटे उत्पादक-श्रम करेगा। वह निजी बात नहीं है। वह आश्रम के लिए है। वह जो कर सकता है, वह

करेगा। लेकिन, कोई न कोई काम हम उससे लेंगे ही। वह चाहे खेती करे, चाहे बागवानी करे, चाहे स्कूल में पढ़ाये, चाहे अस्पताल में सेवा करे। चार घंटे कम से कम वह ऐसा काम करे जिससे उसकी रोजी-रोटी, कपड़ा, व रहने की व्यवस्था आदि का खर्च निकलता हो, ताकि हम किसी के सामने रुपये के लिए हाथ जोड़कर कभी खड़े न हों। अगर कोई देने भी आश्रम को कुछ आये तो हाथ जोड़कर ही आये। लेकिन हम उससे लेने नहीं जायेंगे। क्योंकि जो आश्रम समाज पर निर्भर होता है, वह बदतर हो जाता है। क्योंकि जो एक पैसा भी देता है (और जब हम पैसा मांगने की हालत में होते हैं) तो वह सशर्त ही देता है। उसमें शर्त होती है, चाहे कोई कहे या न कहे।

तो हम कोई सशर्त पैसे नहीं लेंगे। हम मेहनत कर लेंगे। और तभी हमारा प्रभाव व्यापक हो सकता है। तो धीरे-धीरे वहां आश्रमों में हम सब जमायेंगे इंडस्ट्री इत्यादि। चार घंटे आश्रम में प्रत्येक को उत्पादक श्रम करना ही चाहिए। और जब हमें ही लगे कि अमुक सन्यासी से चार घंटे खेत में काम करवाना उचित नहीं है, क्योंकि अगर चार घंटे वह साहित्य निर्माण के काम में लगाये तो ज्यादा काम होता है, तो उसे हम खेत के काम से रोकेंगे। इसका खयाल कम्यून रखेगा। अगर उसका चार घंटे पढ़ना आश्रम के लिए ज्यादा उपयोगी हो, तो वह पढ़े। बाकी जो समय बचता है उसका प्रत्येक संन्यासी अपने निजी ढंग से उपयोग कर सकता है। वह उसकी मौज व रुचि पर छोड़ दिया जायेगा।

और धीरे-धीरे अनेक तरह की रुचियों के लोग आयेंगे। और विभिन्न रुचियां हों तो ही फायदा होगा। क्योंकि वे आपस में उपयोगी होंगे—कोई पढ़ेगा, कोई लिखेगा, कोई एडिट (सम्पादन) करेगा, कोई गीत गायेगा, कोई संगीत बजायेगा— उन सबकी तुम्हें जरूरत पड़ेगी। कोई नाटक में रुचि रखता है तो नाटक बनायेगा, ड्रामा तैयार करेगा, कोई अभिनय में रुचि रखता है तो उसकी तैयारी करेगा।

(३३) व्यापक रूप से जन-मानस को स्पर्श करने की तैयारी

जैसे-जैसे तुम्हारा काम बड़ा होता है और मैं किसी गांव में जाता हूं, तो मैं चाहूंगा कि कोई दो संन्यासी उस गांव में उतार दिये जायं—वे वहां ड्रामा भी करेंगे, नृत्य भी करेंगे, वे समझायेंगे भी, वे कॉलेजों में भी जायेंगे, वे सड़कों पर नाचेंगे भी— वे पूरे गांव को सब तरफ से घेर लेंगे। वे १५ दिन उस गांव में रह जायेंगे तो उस गांव के प्राणों में सब कोनों से घुस जायेंगे।

यानी उस गांव में किसी भी रुचि का आदमी अछूता बच नहीं सकेगा—(संन्यासियों के हृदय का नाच उठना...उनकी मृदु हंसी का गूंज उठना) गांव में अनेक रुचियों के लोग होते हैं। किसी को गीता में रुचि है, किसी को है ही नहीं रुचि। किसी को भजन में रुचि है तो वह भजन में आ जाये। यदि किसी को न गीता में रुचि हो, न भजन में रुचि हो, लेकिन नाटक में रुचि हो तो वह नाटक देखने आ जाय।...अनेक तरह के कार्यक्रम संन्यासी देंगे। तो उस सबकी तैयारी करनी पड़ेगी।

प्रश्न : संन्यासियों को सक्रिय-ध्यान के अतिरिक्त ध्यान की गहराई के लिए और कोई भिन्न प्रक्रिया करनी जरूरी है ?

भगवान श्री : हां, करनी है। धीरे-धीरे सब संन्यासियों को २१ दिन के पूर्ण मौन व एकांत के गहरे ध्यान का प्रयोग कर लेना चाहिए। ध्यान का कोई भी एक विशेष प्रयोग लगातार तीन महीने तक करना चाहिए तो ही गहरा लाभ शीघ्र हो सकेगा। ●●

फूल, फूल और फूल

★ जन्म में ही मृत्यु छुपी है ऐसा जो जान लेता है फिर अस्वीकार करने का उपाय ही नहीं रह जाता।

★ अपनी सुविधा का बहुत विचार मत करना और विचार सदा सुविधा का होता है। दर्शन सत्य का होता है, विचार सुविधा का होता है।

★ अगर विचार छोड़ रहे हो तो 'मेरा' विचार कहना छोड़ दो क्योंकि जहां मेरा है वहां कैसे छूटेगा।

★ अगर मरने की कला सीखनी हो तो जो अतीत हो गया है उसे अतीत हो जाने दो।

★ ध्यान रहे गैर पढ़े-लिखे अंध-विश्वास से पढ़ा-लिखा अंध-विश्वास ज्यादा खतरनाक होता है क्योंकि पढ़ा-लिखा अंध-विश्वास अपने अंध-विश्वास को अंध-विश्वास ही नहीं मानता।

★ अंध-विश्वास भी प्राचीन और आधुनिक होते हैं। जैसे कि 'टाई' बांधना शिष्ट होने का प्रतीक बन गया है और मजिस्ट्रेट भी फांसी लगाए (टाई) खड़ा है, वकील भी और वे कहेंगे कि ये टीका-तिलक लगाये हुये लोग 'अंध-विश्वासी हैं' इन दोनों में प्राचीन और आधुनिक का फर्क है, अंध-विश्वास कायम है।

—संकलन : स्वामी अगेह भारती

ध्यान क्या है?

एक गीत

आंखों में उत्सुकता, प्राणों में प्यास
आज खुले आंगन पर फैला आकाश

बातों के जंगल से गुजरा है मौन
ढेर-सी क्रियाओं के बीच खड़ा ध्यान
अनुभव के शिखरों पर बर्फीली शान्ति
पिघल-पिघल बन जाती गंगा का गान

रोम-रोम पंख हुए, पंख में उड़ान
दूर-दूर जाकर भी अपने था पास

प्राण के निकुंजों से माधुरी बटोर
खेला है चेतन ने वासन्ती फाग
फैली है सतरंगी धूप की सुगन्ध
हौले से जाग गया जीवन का राग

दर्शन की घड़ियों में सब कुछ था शान्त
आत्मा की घाटी में रह गया प्रकाश

कब से थीं मुस्कानें ओंठों में बन्द
सोये थे वीणा में कब से संगीत
ढूंढ़ती रही कब से कोकिला वसन्त
हारों के बीच छिपी कब से थी जीत

पर्वत से फूट पड़ा अमृत का स्रोत
रात की गहनता से भोर का विकास

—*साधु योग प्रीतम,*
प्राध्यापक (हिन्दी-विभाग), भीलवाड़ा

• एक प्रेरक विवेचन

मैं बौरी डूबन डरी रही किनारे बैठ

[भगवान श्री के उद्‌बोधनों पर आधारित]

—स्वामी निर्मल आनन्द भारती, जबलपुर

हम पूछते क्यों हैं, हम उत्तर क्यों जानना चाहते हैं, उत्तर हम सिर्फ इसलिए जानना चाहते है कि जानने के श्रम से कैसे बचा जाय। हमारा जोर श्रम से बचने पर अधिक होता है उत्तर जानने पर नहीं होता और इसलिए हम यह कभी भी नहीं सोचते कि हमारे प्रश्न भी व्यर्थ हो सकते हैं। प्रश्नों से हम अपना बचाव करना चाहते हैं, बिना जाने कि प्रश्न सही भी है कि नहीं। मतलब यह हुआ कि प्रश्न से भी हम बचना चाहते हैं और उत्तर से भी हम बचना चाहते हैं।

पूछने के अनेक आयाम है। कभी-कभी हम सिर्फ इसलिए पूछते हैं, क्योंकि हम महज एक चर्चा आरम्भ करना चाहते हैं। अनेकों बार सिर्फ इसलिए पूछते हैं कि देखो सामने वाला जानता है कि नहीं, यदि उसका उत्तर मिल भी जाय तो हमें सुनाई नहीं पड़ता, क्योंकि हम तो दूसरे प्रश्न की तैयारी में संलग्न रहते हैं और हमें सुनाई तभी पड़ता है, जब उसका उत्तर अपने उत्तर से मिल जाता है। और तब हम बड़े खुश होते हैं यह जानकर कि इसका उत्तर भी ठीक निकला, अन्यथा ठीक उत्तर तो हम जानते ही थे। हम तो सिर्फ कनफर्म करना चाहते थे। जानने न जानने से हमें कोई मतलब नहीं था। मित्र, प्रश्न बड़े वैयक्तिक होते हैं, अतः किसी भी प्रश्न का उत्तर देना वस्तुतः अत्यन्त कठिन

है। प्रश्न सिर्फ शब्दों का समूह होता है, उसमें प्रश्नकर्त्ता के सूक्ष्म भाव भी निहित रहते हैं, फिर शब्दों के अर्थ भी व्यक्तिगत होते हैं, इसीलिए समझना और समझाना बड़ा कठिन काम है।

मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन से उसके बेटे ने पूछा है कि पापा हम कहां से आये ? मुल्ला तो गहरे सोच में पड़ गया कि लड़का तो बिगड़ गया। कितनी उम्मीदें थी इससे, बड़ा नालायक निकला। फिर सोचा उसने कि शायद जमाना ही खराब आ गया है तो इसमें लड़के का क्या दोष। लड़का तो अपना अच्छा ही है। और शायद नये जमाने की यही मांग है, तो उसने बच्चे पैदा होने की सारी बायलॉजी लड़के को समझा दी। लड़का सुनता रहा। फिर नसरुद्दीन ने पूछा, कुछ समझा। लड़के ने कहा, "मैं तो ये पूछ रहा था कि जैसे पप्पू कहता है कि हम पूना से आये हैं वैसे हम कहां से आये हैं ?" हम सब करीब-करीब यही करते हैं, इसीलिए तो किसी दूसरे का उत्तर हमारे काम का नहीं होता।

फिर पूछने का एक और भी कारण है— जानने की एक और भी वासना है, जो हमारे खयाल में नहीं आती। जिसे हम जान लेते हैं उसे हम जीत लेते हैं, उससे हम मुक्त हो जाते हैं, इसीलिए तो हम परमेश्वर तक को जानना चाहते हैं।

परमात्मा अज्ञात है। अज्ञात को हम जानना चाहते हैं। लेकिन हमारी जानने की सारी कीमिया तुलनात्मक है। हमारा जानना, जिसे हम जानना कहते हैं, क्षुद्र ज्ञात का विराट् अज्ञात पर प्रत्यारोपण है। और भी हास्यास्पद तो यह है कि वह क्षुद्र भी हमें ज्ञात नहीं है, जिसके आधार पर हम अज्ञात को जानने में संलग्न रहते हैं। ऐसा विषय ढूंढ़ना मुश्किल है जो स्वयं सिद्धि के आधारों पर न खड़ा हो। ज्यामिति को हम सिर्फ बिन्दु के आधार पर समझे हुए हैं, लेकिन बिन्दु का हमको बिलकुल पता नहीं। अगर ज्यामिति की कोई किताब देखें, तो बिन्दु की परिभाषा दी है—जिसमें कोई लम्बाई चौड़ाई न हो। अब आप सोच सकते हैं, जिसमें न लम्बाई है और न चौड़ाई, उसका अस्तित्व क्या होगा। यह परिभाषा इतनी लचीली है कि कितना ही घटा-बढ़ा सकते हैं। गति विज्ञान को हम बल के आधार पर जानते हैं। बल की परिभाषा भी लगभग इसी तरह की है—कि राम से पूछें कहां रहते हो, तो उत्तर होता है श्याम के घर के सामने; और पूछें कि श्याम कहां रहता है, तो उत्तर होता है राम के घर के सामने; और पूछें कि दोनों कहां रहते हैं, तो उत्तर होता है

एक दूसरे के आमने-सामने। हमारा सारा ज्ञान इसी तरह सरकुलर है और इससे काम चलता है, लेकिन काम चलाऊ से सत्य या असत्य का पता नहीं चलता।

जानने का सीधा सरल तरीका भी है, जिसमें जानने के लिए किसी परिकल्पना, किसी स्वयं सिद्ध की जरूरत नहीं होती। वहां किसी साधन की भी आवश्यकता नहीं होती। वह तरीका है— ध्यान, लेकिन वह हमें खयाल में नहीं आता। फिर कभी कोई बुद्ध, महावीर, जीसस, मुहम्मद, रजनीश आते हैं और इसी ध्यान की बात अनेक-अनेक छोरों से हमें समझाते हैं।

●●

आ
व • र
ण

आपा-धापी से भरे-
धरती गगन में
मच रहे
कोलाहल ने
विस्मरण कर दिया
अस्तित्व...!
अहम् का पूर
आने से,
कुंठित मनुष्यता
स्वयं पर
रह गई है
बोझ बन कर...!
कांप उठा, व्यक्तित्व
अश्रु-भरे
चक्षुओं में
सिमट-सिकुड़ कर
रह गई वसुन्धरा...!

स्वामी
अमृत परमहंस
नई दिल्ली–१८

बोझिल अतीत से
भविष्य भयभीत से
कौमार्य—
वर्तमान का
क्षीण हो गया है...!
मंद स्वर में
चिर-वर्तमान
पुकार रहा है
शांत-शांत-शांत...!
पर कौन सुने—?
'मैं-तू', 'तू-मैं' के
सशक्त भंवर में
फंसा हर व्यक्ति
संलग्न है—
स्वयं को,
कुरूपता छिपाने की
होड़ में...!!

●●

● मा अमृत बोधि, जबलपुर

मेरी संन्यास यात्रा

"तू पीछे क्यों है, तुझे तो आगे होना था।"

यह तो निःसंदेह कहा जा सकता है कि व्यक्ति के स्वयं अपने करने से कुछ नहीं होता प्रभु की जब जैसी इच्छा होती है वही करवाता है। संन्यास लेना भी कोई अपने वश में करने जैसी चीज हो, ऐसा तो मेरी समझ से परे है। मैं अपने संन्यास की ही बात करूं तो इस विषय में कभी सोचा भी न था कि इस पथ की राही बन सकूंगी। इस बारे में मेरा अनुभव ही न था।

वैसे तो भगवान श्री की छाया में रहते १२ वर्ष बीत गए, लेकिन जब पीछे मुड़कर देखती हूं तो लगता है कि १२ वर्ष नहीं १२ दिन ही बीते हैं। भगवान श्री के सान्निध्य में मैं ही नहीं मेरे माता-पिता भाई सभी हैं। लेकिन उनके विचारों का प्रभाव जितना मुझ पर है, उतना परिवार के अन्य सदस्यों पर नहीं। यह भी आप शायद सोचें कि यह अहंकार का सूचक हो तो अनुचित भी न होगा। व्यक्ति जो कुछ भी विचारता है वह वैयक्तिक ही होता है। सत्य तो प्रभु ही जानता है।

जब हमारे नगर के ४–५ मित्र संन्यास लेकर आये मुझे लगा कि प्रभु भी व्यक्ति की पात्रता देखकर कार्य नहीं करता। परन्तु दूसरे ही क्षण याद आया कि भगवान श्री ने एक प्रवचन में कहा था कि **प्रभु अपात्र को ही पात्र बनाता है, असहाय को ही सहारा देता है, अज्ञानी को ही ज्ञान का मार्ग बताता है**। अंततः मैंने यही सोचा कि यदि व्यक्ति अपने को अज्ञानी, असहाय एवं अपात्र समझ ले तो यह बोध ही उसकी पहली पात्रता होगी। संन्यास जैसा सुगंधित पथ भी मुझ जैसी तुच्छ छात्रा का मार्ग बन सकेगा, यह मैंने इसके पूर्व न सोचा था। हां, इतना अवश्य है पिता जी के मित्रों के बीच संन्यास की चर्चा होती थी, लेकिन, मैं उनके बीच में अनभिज्ञ ही थी, यह सोचकर कि शायद मेरे लिए सम्भव न हो सकेगा!

अनायास उस समय मां (आनंदमधु जी) के आने की खबर मिली। मां का जबलपुर आगमन हुआ। आगमन क्या हुआ प्रभु ने मेरे ही लिए जैसे उन्हें भेजा हो। मुझे लगा कि प्रभु कैसी अमृत वर्षा कर रहा है लेकिन हम सब उसका पान करने से वंचित रह जाते हैं। कारण कि सभी गहरी नींद में हैं। उस रस का स्वाद ही नहीं मिल पाता। १८ मार्च ७१, १ बजे मेल से मां आईं। हम सभी प्रसन्न थे, बड़े ही आनंद से उनका स्वागत किया। ट्रेन से उतरते ही उनकी पहली नजर मुझ पर पड़ी और होठों पर हल्की-सी मुस्कान छाई। लगता था कि कुछ कहने जा रही हों, लेकिन बोलते हुए भी उनकी जुबां बन्द थी। न जाने क्या सोच वे चुप ही रहीं, मैं भी उनसे कुछ न कह पाई। हम लोग श्री अरविंद जी के यहां (जहां उनके ठहरने की व्यवस्था थी) गये। घर पर पहुंचकर सभी उत्सुकता से भरे थे। ये सोचा कि मां कुछ आराम करेंगी फिर कुछ बातें होंगी, लेकिन मां का आनन्द तो इतना था कि उनका बच्चों जैसा उछलना, कूदना, बातें करना आराम बन गया। उस दिन मेरी व पापाजी की दोपहर वहीं बीत गई। पापाजी उनसे बम्बई की सारी खबर पूछते व भगवान श्री की कुशलता के बारे में पूछते। लेकिन, मां जब उन्हें संन्यास लेने की बात कहती तो जाने क्या सोच वे चुप हो जाते। ये सब बातें मुझे विस्मित कर देतीं। मैं पापाजी से भी न पूछ पाई कि इसमें हर्ज क्या है ? आप सारी बातें करते और संन्यास के बारे में क्यों नहीं कहते। और न ही मां से ही यह कहने की हिम्मत होती कि कह दूं—आप भी कुछ नहीं बोलतीं। जब उनके तरफ से कोई उत्तर नहीं मिलता, मां मेरी तरफ देख मुस्कुराकर रह जातीं। यह दशा देख शायद वे जान गईं कि मैं क्या कहना चाहती हूं।

कुछ समय बाद हम लोगों ने संध्या ध्यान व नगर कीर्तन का कार्यक्रम रखा। मां ने ही सबको ध्यान करवाया व कीर्तन करने सभी घर पहुंचे। इस बीच सबकी आपस में बातें, गप्पें चल रही थीं। अनायास मां मेरी ओर देख पूछने लगी कि इन्दु तू पीछे क्यों है, संन्यास क्यों नहीं लेती, तुझे तो आगे होना था। इतने सारे प्रश्नों ने मुझे चौकन्नेपन में ढकेल दिया। न जाने क्या उस समय प्रभु-प्रेरणा थी कि मेरे मुख से सहज ही निकल गया— "मा मुझे कोई हर्ज नहीं, मैंने तो प्रभु की हर इच्छा को स्वीकार किया है। किसी ओर से मुझे कोई रुकावट नहीं। जब भी प्रभु मुझे कपड़े माला दे दें, मैं ग्रहण कर लूंगी।" उसी क्षण मां ने मेरे मुख पर बड़े आत्म-विश्वास की झलक देखी, तो वे पूछने लगीं—"क्या तू दृढ़ संकल्प से कह रही है ?" मैंने कहा— "संकल्प वही है

जिसमें दृढ़ता हो; अन्यथा वह संकल्प कहने जैसा नहीं।" मां कहने लगीं, चल तो फिर मैं तुझे कपड़े माला देती हूं। उस समय जो मुझे आनंद का रसास्वादन हुआ वह मैं चाहती हूं सभी ऐसे ही रस का पान करें। तो जहां तक मेरा अनुभव है, शायद फिर कोई आकांक्षा न रह जायगी। पर क्या करूं मैं भी लोगों को पुकारने जाती हूं—जागो सोने वालो, द्वार पर कोई पुकार रहा है, सिर्फ आंख भर खोलने की देर है वह तो आलिंगन करने आया है। बस देरी तुम्हारे जाने की है। तुम आंख भर खोलो। पर सुनने को किसी के पास कोई समय नहीं। और देखती हूं तो सभी को झूठे अहंकार का नकाब ओढ़े पाती हूं।

हां, तो अपनी संन्यास की बातें हो रही थीं। जब मैं मां के साथ थी, न मैंने पापा जी की ओर देखकर यह जानना चाहा कि उनका क्या विचार है और न ही मां की ओर देखना चाहा कि वे हंस रही हैं या रो रही हैं। मां का हाथ पकड़कर मैं अंदर चली गई। उसी समय मां ने लुंगी-कुर्ता निकालकर मुझे दिया और मैंने कपड़े बदल डाले। मैं संन्यासी वस्त्र पहनकर सबसे ऐसे गले जा लगी मानो सब कुछ पा लिया हो, और अब उससे अधिक बहुमूल्य कुछ भी पाने जैसा न हो। उस समय की सुखद अनुभूति को कितने ही शब्दों में बांधा जाय उसके अनुपात में कम ही होंगे। मां की भी खुशी की सीमा न थी, कपड़े पहनकर जब मैं बाहर आई तो सभी जोर-शोर से पापा जी की ओर सम्बोधित कर कहते—मिश्रा जी, आप पीछे ही रहे, इंदु आगे हो गई। यद्यपि दूसरे दिन उन्होंने भी मां से ही संन्यास ले लिया; पर उस समय की प्रसन्नता बैठे सभी व्यक्तियों की अनोखी थी।

संन्यास लेने के बाद जब मैं पहले दिन— कालेज गई, तो सभी लड़कियां मुझसे कहने लगीं—क्यों एकदम से फैशन में कैसे छलांग लगाई? पहले तो तुम इतनी सिम्पल रहती थीं अब कैसे अचानक फैशन का भूत सवार हो गया? फैशन में रंगी उन लड़कियों ने यही सोचा कि यह भी उसी रंग में रंगी है। लेकिन जब मैंने समझाया कि मैंने भगवान श्री के सान्निध्य में संन्यास लिया है, तब वे मुझे बड़े आश्चर्य से देखतीं कि संन्यास और इस उम्र में! इस युग में यह कैसे सम्भव है! इस तरह कॉलेज के लेक्चरार, प्रोफेसर सभी आश्चर्य करते कि संन्यास बड़ा अद्भुत काम है। सभी यही प्रश्न करते कि तुम्हारे मन में यह विचार आया कैसे? मैंने फिर एक उपाय सोचा: संन्यास के सम्बन्ध में भगवान श्री के प्रवचन, वार्ताएं व साहित्य उन्हें पढ़ने दिये। कुछ छात्राएं प्रभावित भी हुईं, भगवान श्री को उन्होंने पत्र भी लिखे। इस तरह

मैंने एक ही ड्रेस में ३ हफ्ते गुजारे। सम्भव है आपके मन में प्रश्न उठे कैसे ? यह तो मैं व आप क्या प्रभु ही जानता है !

मेरे संन्यास के बाद लोगों की मानसिक प्रतिक्रियायें क्या थीं, विशेषकर जबलपुर-वासियों के बीच वे बड़ी विचित्रता लिये हुए हैं। कई तरह के व्यंग सुनने को मिलते, जो मेरे लिए चेतनता के प्रतीक बनते। मुझे वह दिन भी याद है जब हमारे यहां के प्रोफेसर ने मुझसे कहा कि संन्यास की उम्र तो अभी हम लोगों की है। अभी तुमने दुनिया देखी कहाँ है ? तुम्हें जीवन का अनुभव ही कहां है ? मैंने कहा, मुझे अनुभव नहीं है इसलिए ही तो संन्यास लिया है। यदि अनुभव हो जाता, दुनिया देख लेती, यदि कर्मों का ज्ञान हो जाता, तो शायद जरूरत न होती कि इस झंझट में फसूं। और लिया ही कहां है—प्रभु ने प्रसाद रूप घर पर ही भेज दिया, तो पा लिया। इसलिए ही तो कहती हूं, व्यक्ति के करने मात्र से कुछ नहीं होता।

ये सब सोच मेरे भीतर से यही निरंतर निकलता है—धन्य है प्रभु तू ! कितनी कृपा बरसा रहा है !! तेरे चरणों में शत-शत प्रणाम !!!

●●

● आबू शिविर

[१३से२१अक्टू०'७२]

अविश्वास की आग

भगवान श्री के सान्निध्य में अभी सम्पन्न हुए 'माउण्ट आबू साधना शिविर' के परमात्म आनंद को हृदय के तड़पते स्वरों में प्रस्तुत किया है : अजमेर के स्वामी परमानंद भारती ने, उसे ही यहां उनकी अनुकम्पा से प्रकाशित कर रहे हैं।

अब तो कुछ भरोसे के काबिल लगता नहीं
और तेरे मुंह से निकले इन शब्दों का
जो जोर से गूंजकर घाटी में खो जाते हैं
पहाड़ियों पर तैरते अनंत असीम में फैल जाते हैं
उनका भरोसा करूं ? कैसे ? किस—किसका ?
हर रोज सुबह और शाम
तेज अदृश्य घुड़सवारों से

जो एक के पीछे एक चले जाते हैं
उन पर भरोसा ?
जो भाग जाते हैं, क्षण भी ठहर नहीं पाते हैं
मुखरित होते ही चुप हो जाते हैं—
उनसे भरूं स्मृति का टेप ?
और उसे सुनता रहूं बार-बार ?
करता रहूं, उन पर विचार ?
ऐसा करता था, कभी कोई नादान
मगर अब उसने इस्तीफा पेश कर दिया है
और मैं भी जैसे इसी इंतजार में ही बैठा था
झटपट मंजूर कर इस्तीफा
मैंने उसे बिदा कर दिया है
क्योंकि शब्दों का क्या भरोसा ?
और जिसका नहीं भरोसा
उसकी भीड़ इकट्ठी कर लेने का क्या प्रयोजन ?
इससे क्या, कि कुछ ने उन शब्दों को
अपने टेप-रिकार्डर में भर लिया है
कुछ ने स्मृति में कैद कर लिया है
और आज नहीं कल
वे प्रेस में पन्नों पर छपकर
पहुंचेंगे अनेक-अनेक हाथों में
परंतु तब तो वे होंगे और भी असहाय, मुर्दा
क्योंकि वह तेरी प्राणों की तड़प !
वह अथाह-पीड़ा व करुणा का आनंद तेरा !
कैसे मुखरित होगा उन मुर्दा शब्दों में ?
टेपों में बंद आवाज भी, दे सकेगी बस झलक !
परंतु अदृश्य रह जायगा, तेरा वह व्यक्ति, वह पूरा माहौल
जिसके बीच तेरे श्रीमुख से—
झरा था एक-एक शब्द, अमृत की बूंद बनकर
और मुझ जैसे अनेक प्यासे
बजाय इसके कि सुधा-रस पान करते

भरते रह गये स्मृति को—शब्दों की भीड़ से
इस लालच में कि बता सकें कल औरों को भी
कि 'हम' कहां गये थे ?
कोई ऐसे-वैसे को सुनने नहीं गए थे
इतने बेवकूफ नहीं हैं हम, जो आबू की पहाड़ियों में
इतने दिन 'हू-हू' कर रहे थे
तो लोगों को समझाने के लिए
अपनी समझदारी बताने के लिए
अपने 'अहं' को बचाने के लिए
हमने शब्दों से स्मृति को भर लिया है
और तू लाख कहे कि 'अहं' को छोड़ना है
लेकिन हम सभी इसे समझ लेंगे, इससे सहमत हो जायेंगे
और अब इस तरकीब से ही, हम उसे बचा पायेंगे
कोई अन्यथा उपाय नहीं रह गया है, अब उसके बचने का
बहुत बुरी तरह पिटा, हारा-थका हमारा 'अहं'
इस तजवीज से ही बचा पाएगा, अपने को अब
और बचा ही लेगा; क्योंकि कल तक तो
पूरा भरोसे के काबिल था यह सब
परन्तु आज अब भरोसा होता नहीं
शब्दों का भरोसा भर ही हो तो कोई बात नहीं
परन्तु अब तो 'अविश्वास की आग' ने, ऐसा पकड़ा है चारों तरफ से
कि तू ही बोल रहा है क्या ?
—इस पर भी सशंकित हो उठता है मेरा मन
और कल क्या तेरा हाथ पकड़कर, हम कबूल करवा सकेंगे तुझसे
वह सब जो आज तक तू ने कहा है ?
वह जो तेरे श्री-मुख से बहा है ?
नामुमकिन लगता है मुझे इसीलिए अविश्वास से भर गया है मेरा मन
उस आकृति के प्रति भी—जिसके मुह से यह सब कहा जा रहा है
निरंतर-निर्बाध बहा जा रहा है
अविश्वास की आग ने, सारा विश्वास मेरा दग्ध कर दिया है !

—स्वामी परमानन्द भारती, अजमेर

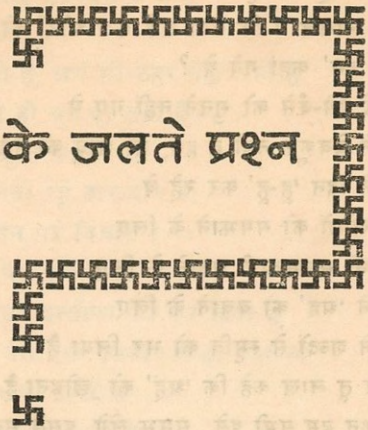

देश के जलते प्रश्न

अहमदाबाद में इस विषय पर भगवान रजनीश के पांच प्रवचन हुए हैं। पिछले अंक में इस विषय पर प्रवचन आपने पढ़ा। ये प्रवचन दिसम्बर '६९ के अन्तिम सप्ताह में आयोजित किए गए थे। उसी क्रम में यह दूसरा प्रवचन है।

बहुत-सी समस्यायें हैं और बहुत-सी उलझनें हैं लेकिन एक भी उलझन नहीं, जो मनुष्य हल करना चाहे और हल न हो सके। लेकिन यदि मनुष्य सोच ले कि हल हो ही नहीं सकतीं, तब फिर सरल से सरल उलझन भी सदा के लिए उलझन रह जाती है। इस देश का दुर्भाग्य है कि हमने बहुत-सी उलझनों को ऐसा मान रखा है कि वे सुलझ ही नहीं सकतीं। और एक बार कोई कौम इस तरह की धारणा बना ले तो उसकी समस्या फिर कभी हल नहीं हो सकती। जैसे बड़ी से बड़ी हमारी समस्या गरीबी की, दीनता की, दरिद्रता की है लेकिन इस देश में दीनता, दरिद्रता को दूर करने की बजाय व्याख्या स्वीकार कर रखी है, जिससे दरिद्रता कभी भी दूर नहीं हो सकेगी— बजाय दरिद्रता को समझने के कि हम उसे कैसे दूर कर सकें, हमने दरिद्रता को इस भांति समझा है कि हम कैसे उसे स्वीकार कर सकें। दूर करना तो दूर, स्वीकार करने की प्रवृत्ति ने उसे स्थायी बीमारी बना दिया। सोचा नहीं, ऐसा नहीं है, लेकिन गलत ढंग से सोचा और कोई न सोचे तो कभी ठीक ढंग

से सोच ले भी और एक बार गलत ढंग से सोचने की आदत बन जाय तो हजारों साल पीछा करती है। गरीब हम बहुत पुराने समय से हैं। सच तो यह है कि हम अमीर कभी भी न थे। हो भी नहीं सकते थे। देश के सोने की चिड़िया होने की बात है, वे बातें कुछ लोगों के लिए हमेशा सच रही हैं, पूरे देश के लिए कभी नहीं। कुछ लोगों के लिए यह देश हमेशा सोने की चिड़िया था अब भी उनके लिए है, लेकिन पूरे देश के लिए सोने की चिड़िया की बात बिलकुल बेमानी है। देश हमेशा से गहरी गरीबी में रहा है। सच तो यह है कि हम इतने गरीब थे कि गरीबी के खिलाफ विद्रोह भी हम नहीं कर सके। गरीबी के खिलाफ विद्रोह तब शुरू होता है जब अमीरी थोड़ी-सी फूटनी शुरू हो जाती है। गरीब, गरीबी के खिलाफ विद्रोह भी नहीं कर सकते हैं। बहुत गरीब कैसे विद्रोह करेगा ? अस्पताल जाने के लिए बिलकुल बीमार होना काफी नहीं, थोड़ा-सा स्वास्थ्य चाहिए ताकि अस्पताल जाया जा सके। जब अमीरी की थोड़ी-सी किरणें फूटनी शुरू होती हैं तब गरीबी के खिलाफ विद्रोह होता है। जब गरीबी इतनी ज्यादा होती है कि हमारे प्राण और हमारी आत्मा सब उसमें डूब जाती है तो गरीबी के खिलाफ बगावत भी पैदा नहीं होती।

यह देश बहुत पुराने समय से सदा से, सनातन से गरीब है। हमने सोचा इस पर। हमारे विचारकों ने न सोचा हो, ऐसा नहीं, लेकिन हमारे विचारकों ने इस गरीबी को इस भांति सोचा ताकि यह स्वीकृत हो जाय, अंगीकार हो जाय। हमने गरीबी के लिए व्याख्यायें की हैं और हमारी सबसे खतरनाक व्याख्या यह थी कि हमने गरीबो को व्यक्ति के कर्मों से जोड़ दिया। यह इतनी खतरनाक, इतनी स्वीसाइडल, इतनी आत्मघाती व्याख्या थी कि इसके कारण हम पांच हजार साल गरीब रहे और अगर यह व्याख्या अब भी जारी रहती है और ऐसा लगता है कि अब भी जारी है, साधु और संत और महात्मा गांव-गांव लोगों को यही समझाते फिर रहे हैं, आदमी गरीब है अपने पिछले जन्मों के कारण। गरीबी को पिछले जन्मों से जोड़ देने का मतलब यह है कि गरीबी नहीं बदली जा सकती। उसके बदलने का कोई उपाय नहीं है, उसे भोगना ही पड़ेगा, वह अपने कर्मों का फल है। अगर मैंने आग में हाथ डाला है तो अब जल गया है तो भोगना ही पड़ेगा। पिछले जन्मों के कर्मों का अब बदलने का कोई उपाय नहीं है। पिछले जन्मों के कर्म वे हैं जो हो चुके और उनका फल गरीबी मुझे आज भोगनी पड़ रही है। हमने एक व्याख्या की जिसमें गरीबी पर सील मुहर लगा दी कि इसे अब कभी नहीं तोड़ा जा सकता।

गरीबी भोगनी ही पड़ेगी और अगर गरीबी मिटानी हो तो इस जन्म में अच्छे कर्म करो ताकि अगले जन्म में गरीबी न रहे, अमीरी हो जाय। और अच्छे कर्मों में निश्चित ही बगावत नहीं आती, अच्छे कर्मों में विद्रोह नहीं आता, अच्छे कर्मों में क्रांति नहीं आती। अच्छे कर्मों में आती है शांति। क्रांति तो बुरे कर्मों का ही हिस्सा है। इसलिए शांति से जियो, संतोष से जियो, सांत्वना रखो, अगले जन्म की प्रतीक्षा करो। गरीबी सुनिश्चित हो गई, उसको बदलने का कोई उपाय न रहा। एक बार जब हमने यह तय कर लिया कि व्यक्ति कर्मों का फल भोग रहा है गरीबी के रूप में तो फिर गरीब पर दया करना भी बेमानी हो गया, गरीब के साथ सहानुभूति भी व्यर्थ हो गई। अगर मैं अपने कर्मों का फल भोग रहा हूं तो दया और सहानुभूति की क्या जरूरत है? इसलिए यह देश गरीबी के प्रति बिलकुल अनसेंसिटिव हो गया है, संवेदनहीन हो गया। अगर आदमी सड़क पर भीख मांग रहा है तो उस पर दया करने का कोई भी अर्थ नहीं है, वह अपने कर्मों का फल भोग रहा है। अपने कर्मों का फल भोगना ही चाहिए और अगर मैं उसे दो पैसा दान कर रहा हूं तो उस भिखमंगे पर दया करके नहीं, वे पैसे दान कर रहा हूं अगले जन्म फिर अमीर होने के लिए। उस भिखमंगे से उन दो पैसे का दान का कोई सम्बन्ध नहीं है, उस गरीब पर दया करने का कोई सवाल नहीं है। सिर्फ एक सवाल है कि उस पर दया करके मैं स्वर्ग की सीढ़ियों पर पैर रख सकता हूं। गरीब की गरीबी मेरे लिए सीढ़ियों का काम कर सकती है, स्वर्ग तक पहुंचा सकती है। दान को बुनियादी धर्म कहा है, इसलिए नहीं कि गरीब को उससे हित होगा। गरीब अपना फल भोग रहा है। दान उस अमीर के हित में होगा कि वह स्वर्ग के द्वार खोल लेगा। दान चाभी है।

एक स्वामी जी ने एक किताब लिखी है, उसमें लिखा है कि समाजवाद कभी नहीं आना चाहिए, क्योंकि जिस दिन समाजवाद आ जायेगा उस दिन कोई गरीब नहीं होगा। दान कौन देगा और कौन लेगा और बिना दान के स्वर्ग का दरवाजा बन्द होगा। स्वर्ग का दरवाजा बन्द हो जायेगा। गरीब रहना चाहिए ताकि हम उस पर सीढ़ियां बना सकें। दीन, दरिद्रता रहना चाहिए ताकि उसके कंधे पर अपने पैर रखकर हम ऊपर जा सकें। इतनी संवेदन-हीनता गरीबी के प्रति हममें पैदा हुई, हमारी व्याख्या के कारण। एक बार हम व्याख्या ऐसी कर लें तो फिर संवेदनहीन हो जाते हैं।

पुराने जमाने में यज्ञों में हम जानवरों को काटते थे, लेकिन मजे से काटते थे। काटने वाले को जरा पीड़ा नहीं होती थी, क्योंकि मान्यता यह थी

कि काटे गये जानवर स्वर्ग पहुंच जाते हैं और जब स्वर्ग भेज रहे हैं तो काटने में तकलीफ क्या है। तो यज्ञ में हिंसा के प्रति हम संवेदनहीन हो गये। कोई संवेदना का सवाल न था। हम स्वर्ग भेज रहे हैं। वह तो कुछ लोग हुए इस मुल्क में जैसे चारवाक, और उन्होंने कहा कि फिर अपने पिता को क्यों नहीं काट देते हो, स्वर्ग चला जायगा। तब हमको खयाल आया कि हम जानवरों के साथ क्या कर रहे हैं। एक शब्द आपने सुना होगा। आज कोई भी लिखता है अपने नाम के सामने शर्मा। लेकिन आपको पता नहीं होगा कि शर्मा का मतलब क्या है। शर्मा का मतलब है जो यज्ञ में जानवर काटता था। शर्मन का मतलब काटने वाला। यह बड़ा गंदा शब्द है, इसका मतलब है काटने वाला। तो वह काटता था जानवर को। बड़ा कीमती आदमी था। वह जानवरों को स्वर्ग पहुंचाता था इसलिए बड़ा पूज्य था, लेकिन आज हम नहीं सोच सकते इस भाषा में। आदमी संवेदनहीन हो सकता है अगर व्याख्या उसे ऐसी मिल जाय। गरीब के प्रति हम संवेदनहीन हो गये हैं। गरीबी के प्रति भी हम संवेदनहीन हो गये हैं और जब पिछले जन्मों का कर्म का फल है तो अब कुछ भी नहीं किया जा सकता। गरीबी को स्वीकार ही करना होगा।

एक उस व्याख्या में दूसरी व्याख्या भी सम्मिलित थी कि गरीबी प्रत्येक की निजी जिम्मेवारी है, इन्डीवीज्युअल रिस्पांसिबिलिटी है। अगर मैंने बुरे कर्म किये हैं तो मैं गरीब हूं और अच्छे कर्म किये हैं तो मैं अमीर हूं। गरीबी और अमीरी से समाज का कोई संबंध नहीं, व्यक्ति का सीधा संबंध है। यह व्याख्या भी बड़ी मंहगी पड़ी क्योंकि वस्तुतः अमीरी और गरीबी सामाजिक संदर्भ में अर्थ रखती है। कोई व्यक्ति अकेला न गरीब हो सकता है, न अमीर हो सकता है। समाज की व्यवस्था में कोई अमीर होता है और कोई गरीब होता है। गरीबी और अमीरी सामूहिक दायित्व है सोशल रिस्पांसिबिलिटी है। यह खयाल ही नहीं पैदा हुआ क्योंकि हमने व्यक्ति को जिम्मेवार ठहरा दिया था इसलिए हम पांच हजार साल गरीब रहे लेकिन ये व्याख्यायें अब भी हमारे मन में चलती हैं, अब भी हमारे मन इनसे घिरे हैं और मुक्त नहीं हुए हैं। ध्यान रखना जरूरी है कि अगर गरीबी को तोड़ना हो तो इन व्याख्याओं में आग लगा देनी पड़ेगी। यह चिन्तन बदलना पड़ेगा। गरीबी हमारा सामाजिक दायित्व है लेकिन इतने से ही गरीबी मिट नहीं जायगी। इतने से सिर्फ गरीबी को मिटाने की सुविधा पैदा होगी। यह हमारी पुरानी आदत है कि गरीबी को या तो पिछले जन्मों पर छोड़ो या व्यक्ति के कर्म पर या भगवान पर, हमें और भी खतरे में ले

गई। दूसरे पर छोड़ने की आदत से, हमने कहा कि अंग्रेजों ने हमें लूट लिया इसलिए हम गरीब हैं। अंग्रेजों के लूटने की वजह से थोड़ी हमें परेशानी हुई लेकिन उस वजह से हम गरीब नहीं हैं। अंग्रेजों के लूटने के पहले भी हम गरीब थे और अगर हमने ऐसा सोचा कि अंग्रेजों ने लूट लिया है इसलिए हम गरीब हैं तो फिर हमने गरीबी को ठहरा लिया है कि अब क्या कर सकते हैं, लुट ही गए हैं। गरीब रहना पड़ेगा। नहीं, मूल कारण खोजने की हमारी प्रवृत्ति नहीं है। फिर एक नई बात पैदा हुई है कि पूंजीपति शोषण कर रहा है इसलिए हम गरीब हैं। यह बात भी बहुत खतरनाक है और झूठी है। पूंजीपति शोषण नहीं कर रहा था तो भी हम गरीब थे और अगर आज पूंजीपति के पास जितने पैसे हैं, वह बांट दिये जायं तो देश अमीर नहीं हो जायेगा। यह खयाल में रख लेना जरूरी है।

मुझे एक घटना याद आती है। एक अमरीकन अरबपति, रफचाइल्ड से एक साम्यवादी विचारक मिलने गया था और उसने रफचाइल्ड को कहा कि तुम्हारी वजह से मुल्क गरीब है, हजारों लोग गरीब हैं। रफचाइल्ड ने कागज उठाया, कलम उठाई और कुछ हिसाब लगाया और आधाडालर उस साम्यवादी विचारक को दे दिया और कहा, यह ले जाओ। उसने कहा, क्या मतलब आपका ? रफचाइल्ड ने कहा, जिनको और मांगना हो वे आ जायं मेरे पास, जितनी सम्पत्ति है अगर मैं उसमें सारी दुनिया की आबादी का भाग दूं तो आधा-आधा डालर एक-एक आदमी के जिम्मे पड़ता है। यह मैं बांटे देता हूं और जिसको भी मांगना हो वह ले जाय। लेकिन क्या तुम सोचते हो कि दुनिया अमीर हो जायेगी ?

अगर आज हिन्दुस्तान में दस पूंजीपतियों की संपत्ति को बांट दिया जाय तो क्या आप सोचते हैं कि यह देश समृद्ध हो जायगा ? हमारे नेता इसी भ्रम में पड़े हैं कि अमीरों को बांट देने से कोई देश की गरीबी मिट जायगी। हां, गरीब का क्रोध पूरा हो जायगा लेकिन क्रोध के पूरा होने से गरीबी नहीं मिट सकती। गरीब की शत्रुता पूरी हो जायगी, गरीब की ईर्ष्या पूरी हो जायगी लेकिन गरीब की ईर्ष्या पूरी हो जाने से कोई गरीबी नहीं मिटाई जा सकती है। गरीबी के कारण गहरे हैं और अगर हम न समझ पाये तो हम एक बहुत बड़े खतरे की हालत में खड़े हैं। हमने पुरानी व्याख्या के कारण बहुत परेशानी उठाई, हमारी नई व्याख्या भी खतरनाक सिद्ध हो सकती है। अगर हमने यह समझ लिया कि कुछ पूंजीपतियों के कारण देश गरीब है और हमने

उनको अगर बांटने की कोशिश की तो हम सिर्फ गरीबी को बांट लेंगे और हम कुछ भी नहीं कर पायेंगे। अमीरी बांटने के लिए देश के पास है ही नहीं। धन भी तो चाहिए न बांटने के लिए। समाजवाद क्या बांट सकता है, धन हो तो बांट सकता है। समाजवाद गरीबी को बांटेगा तो क्या परिणाम हो सकता है। पूंजीपति जिम्मेवार है, अगर इस भाषा में गरीब ने सोचा तो गरीबी मिटने वाली नहीं है। फिर वह मूल कारण पर नहीं जा रहा है। अभी एक भूल हुई, हमारे एक संत गांव-गांव गये और गरीबों से जमीन मांग ली और जमीन देने वाले भी गरीब हो गए। जिनके पास पांच एकड़ जमीन थी उसने दो एकड़ जमीन दान कर दी। उसके पास तीन ही एकड़ जमीन बची। देश इतना गरीब है कि बांटने की बात अगर हमने की तो सिर्फ गरीबी बंटेगी। अमीरी होनी चाहिए न बांटने के लिए घर में, कुछ बांटने को हो तभी बांट सकते हैं। घर में बांटने को ही न हो तो क्या बंटेगा ?

देश की गरीबी के कारण और भी गहरे हैं लेकिन क्रोध गरीब का है, स्वाभाविक है और इसलिए समाजवाद की बात गरीब को बड़ी अर्थपूर्ण मालूम होती है। मैं खुद समाजवादी हूं लेकिन मैं समझता हूं कि अभी पचास साल तक इस देश को समाजवादी बनाने की कोशिश ऐसे ही है जैसे मां के पेट से पांच महीने में बच्चे को बाहर निकाल लिया जाय। वह बच्चा भी मरेगा और उसकी मां के बचने की उम्मीद भी बहुत कम है। जब तक कोई देश ठीक से सम्पत्ति पैदा न कर ले तब तक समाजवाद सपना है। सपने देखना बहुत अच्छे हैं लेकिन उनको रूपांतरित करना जिन्दगी में बहुत कठिन है। अगर समाजवाद के लिए कोई भी रास्ता जाता है, निश्चित ही मास्को तक पहुंचना पड़ेगा लेकिन मैं बड़ी उल्टी बात आपसे कहना चाहता हूं। मास्को तक जो निकटतम रास्ता है वह वाया वाशिंगटन जाता है, और कोई रास्ता ही नहीं जाता। वह जो वाशिंगटन में वाल स्ट्रीट है उसके ही लिए आखिरी छोर पर केमिलन के लाल सितारे चमक सकते हैं। और कोई रास्ता नहीं है। अगर हमने वाशिंगटन से बचकर जाने की कोशिश की तो यह देश आगे भी गरीब रह जाएगा, और ज्यादा गरीब हो सकता है। पूंजी पैदा होना चाहिए तब पूंजी बांटी जा सकती है लेकिन हमारी पुरानी आदत है किसी दूसरे को जिम्मेवार ठहरा देने की—भाग्य को, पिछले जन्म को, भगवान को, ब्रिटिश साम्राज्य को, अब पूंजीपति को : लेकिन हम अपनी जीवन व्यवस्था के बुनियादी आधार पर सोचने की तैयारी नहीं दिखाते जिनकी वजह से हम गरीब हैं। मैं उन कारणों के सम्बन्ध में कुछ बातें आपसे कहना चाहता हूं।

इस समय चूंकि बात बहुत गर्म है लेकिन पोलिटकल स्टंट से ज्यादा नहीं है। इस समय समाजवाद की बात बड़े जोर से चर्चा में है लेकिन समाजवाद की बात से समाजवाद नहीं आता। समाजवाद आसमान से नहीं उतरेगा। समाजवाद तो हमें विकसित करना होगा और हम जो कि सम्पत्ति ही पैदा नहीं कर पाये, पूंजी ही पैदा नहीं कर पाये, कैसे समाजवाद को ला सकते हैं। पूंजीवाद समाजवाद का पहला चरण है। यह देश अभी ठीक अर्थों में पूंजीवादी भी नहीं है। ध्यान रहे, समाजवाद पूंजीवाद से उल्टी व्यवस्था नहीं है, समाजवाद पूंजीवाद का चरम विकास है। पूंजीवाद जब पूरी तरह विकसित होता है तो समाजवाद में रूपांतरित हो जाता है। जब पूंजी इतनी अतिरेक हो जाती है कि उसे व्यक्ति के पास रहने का कोई अर्थ नहीं होता तभी वह समाज में ओव्हर फ्लो करती है, तभी वह समाज में बंट सकती है। लेकिन जब तक पूंजी बहुत कम है तब तक समाजवाद स्वीसाइडल, आत्मघाती है, अपने हाथ से मर जाने का उपाय है लेकिन यह आज समझाना कठिन है क्योंकि हमें ऐसा लगता है कि पूंजीपति को बांट दो तो सब ठीक हो जायगा। लेकिन पूंजीपति को बांटने से ठीक हो जायेगा ? पूंजीपति को बांटने से कुछ भी ठीक नहीं हो सकता है। सिर्फ पूंजी पैदा करने जो व्यवस्था थी वह भी टूट जायगी, पूंजी को पैदा करने की जो प्रेरणा थी वह टूट जायगी और हमारे जैसे आलसी, प्रमाद से भरे हुए भाग्यवादी देश में अगर पूंजी को पैदा करने की प्रेरणा भी टूट जाय तो शायद हम अपने इतिहास का सबसे दुर्दिन का दिन देखना शुरू कर देंगे लेकिन अनुभव हमें कुछ भी नहीं सिखाता। जिन-जिन व्यवस्थाओं को सरकार ने अपने हाथ में लिया है समाजवाद के नाम पर, वे सारी व्यवस्थाएं असफल सिद्ध हुई हैं। सरकार से कुछ भी नहीं चलता, क्योंकि चलाना तो आदमियों से पड़ेगा। मैं जिस प्रदेश में हूं उस प्रदेश की सारी रोडवेज को, मोटर सर्विसेज को, बसेस को सरकार ने ले लिया है। उनकी कमेटी हुई। उनकी कमेटी के चेयरमैन मुझे मिलने आये। उन्होंने कहा कि मुझे तीस लाख रु० साल का घाटा हो रहा है। एक आदमी के पास बस हो तो वह अमीर हो जाता है, इतना कमा लेता है। सारे प्रदेश की बस उनके पास हैं, तीस लाख रु०साल का उनको घाटा हो रहा है। जहां-जहां सरकार ने राष्ट्रीयकरण के नाम पर जो-जो चीज अपने हाथ में ली है वहां-वहां नुकसान है। अगर पूरे देश की सम्पत्ति का उत्पादन राज्य के हाथ में चला जाय तो समाजवाद के नाम पर, तो यह देश आने वाले बीस वर्षों में और भी गरीब हो जायगा। अमीर नहीं होगा, क्योंकि सिर्फ सम्पत्ति के उत्पादन के साधन हाथ में ले लेने से राज्य के, कुछ भी नहीं

हो सकता है। इस देश के मानस को बदलना जरूरी है। वह मानस गरीब होने की पूरी तैयारी लिए बैठा है। उस मानस के सम्बन्ध में मैं कुछ बात करना चाहता हूं।

पहली बात तो मैं यह कहना चाहता हूं कि समृद्ध होने के लिए बहुत और तरह के विचार की जरूरत है जो हमारे मन में ही नहीं है। एक छोटी-सी कहानी से मैं समझाऊंगा।

कंफ्यूसस ने लिखा है कि वह एक गांव से गुजरता था। उस गांव में उसने एक माली को अपने बगीचे में पानी सींचते देखा। बूढ़ा माली है, उसका जवान बेटा है। दोनों बैलों और घोड़ों की तरह मोट में जुते हैं। कंफ्यूसस हैरान हुआ, क्योंकि तब तक यह ईजाद हो गई थी कि आदमी की जगह बैल या घोड़े जोते जा सकते थे। कंफ्यूसस बूढ़े के पास गया और कहा, मालूम होता है तुम्हें पता नहीं है। अब तुम क्यों जुते हो चौबीस घंटे इस मोट में, घोड़े और बैल जोते जा सकते हैं। उस बूढे ने कहा, धीरे बोलो, कहीं मेरा बेटा न सुन ले। कंफ्यूसस ने कहा, क्यों ? उसने कहा, पीछे आना। बेटे के चले जाने के बाद उस बूढ़े ने कहा, अब बोलो, मुझे पता है। घोड़े जोते जा सकते हैं, लेकिन घोड़ा जोतने से मेरा जवान लड़का विश्राम करने लगेगा और श्रम जीवन की सबसे कीमती चीज है। मैं नहीं चाहता कि जवान लड़का विश्राम करने लगे। श्रम ही तो सब कुछ है, इसलिए मैं घोड़े नहीं लाता। मुझे यह भी पता है कि मशीन भी निकल गई है एक छोटी, जिससे हम पानी बाहर फेंक सकते हैं, लेकिन वह भी मैं नहीं लाना चाहता, क्योंकि लड़का विश्राम करने लगेगा और जवानी में विश्राम बहुत बुरा है। कंफ्यूसस को भी यह बात जंची है और उसने अपनी किताब में लिखा है कि मुझे वह बूढ़ा बहुत अच्छा मालूम पड़ा।

हिन्दुस्तान का मन हजार साल से इस बात को ठीक समझ रहा है। वह यह समझ रहा है कि श्रम करना कोई बहुत ऊंची बात है। इधर हमारे एक नेता ने एक नारा दिया था 'आराम हराम है', लेकिन कोई आदमी पूछे कि आदमी आराम के लिए जीता है या किसी और चीज के लिए जीता है ? श्रम भी आदमी इसीलिए करता है कि आराम को उपलब्ध हो सके, मेहनत भी इसलिए करता है कि विश्राम कर सके। विश्राम जीवन का लक्ष्य है, श्रम नहीं। श्रम केवल साधन है। भारत पांच हजार वर्षों से श्रम को साध्य बनाये हुए है, साधन नहीं। वह कहता है श्रम जीवन का लक्ष्य है। श्रम जीवन का लक्ष्य ही नहीं है, जीवन का लक्ष्य विश्राम है, जीवन का लक्ष्य आराम है और आराम

हराम नहीं है क्योंकि लक्ष्य अगर हराम हो जायगा तो पूरी जिन्दगी हराम हो जायगी। लेकिन आराम करने के लिए श्रम करना पड़ता है। श्रम साधन है और जिसे आराम पाना हो उसे श्रम करना पड़ता है, लेकिन आराम के लक्ष्य को हटाया नहीं जा सकता। बड़े मजे की बात है, लेकिन हिन्दुस्तान श्रम को बड़ा आदर देता है। श्रम से सम्पत्ति पैदा नहीं होती। यह आपको उल्टी बात मालूम पड़ेगी। हमें तो लगता है श्रम से ही सम्पत्ति पैदा होती है। नहीं, जो कौम विश्राम खोजने की कोशिश करती है वह श्रम से बचने की कोशिश में टेक्नोलाजी का विकास करती है। टेक्नोलाजी सब्स्टीट्यूट है श्रम का। अगर मुझे आपके घर आना है तो मैं पैदल आ सकता हूं। पदयात्रा करूं तो आपको भी अच्छा लगेगा। अखबार भी खबर छापेंगे कि पदयात्री है, लेकिन मैं पैदल चलने से बचना चाहता हूं इसलिए साइकिल को ईजाद करता हूं, मैं पैदल चलने से बचना चाहता हूं इसलिए कार ईजाद करता हूं, मैं पैदल चलने से बचना चाहता हूं इसलिए हवाई जहाज ईजाद करता हूं। जो कौम श्रम से बचना चाहती है वह टेक्नोलाजी को विकसित करती है। जो कौम श्रम को आदर देती है वह टेक्नोलाजी को विकसित नहीं करती। टेक्नोलाजी के अतिरिक्त धन कभी पैदा नहीं होता। धन होता है टेक्नोलाजी से पैदा, श्रम से नहीं, इसलिए जो कौम जितना विश्राम की आकांक्षा करती है उतनी टेकनीक को विकसित करती चली जाती है। आप हैरान होंगे, दुनिया का सारा विकास उन लोगों ने किया है जो विश्राम के आकांक्षी हैं। दुनिया के सारे अविष्कार उन लोगों ने किये हैं जो विश्राम के आकांक्षी हैं। आपने यह कहावत सुनी होगी कि "आवश्यकता आविष्कार की जननी है"। वह कहावत बहुत सच नहीं है। विश्राम की आकांक्षा आविष्कार की जननी है। इसलिए बुद्धिमान आदमी सब तरफ से विश्राम खोजता है।

शायद आपने सुना हो, एडीसन ने कोई एक हजार आविष्कार किये हैं। दुनिया में किसी एक आदमी ने इतने आविष्कार नहीं किये। एडीसन एक फैक्टरी में काम करता था प्रारम्भ में और उसका काम इतना था केवल कि जब कोई फोन आये तो वह अपने मालिक को खबर कर दे। रात भर उसे जगना पड़ता था। किसी रात फोन आता भी था, किसी रात नहीं भी आता था। तो उसने एक तरकीब विकसित की रात भर सोने के लिए। उसने फोन के साथ घंटी जोड़ी इतनी तेज कि नींद खुल जाय और वह मालिक को खबर कर सके। फिर वह निश्चिंत सोने लगा। महीने बीत गये, जब कभी जोर की

घंटी बजती वह उठ जाता और मालिक को खबर कर देता। ऐसे वह सोता था। एक दिन उसकी घंटी बिगड़ गई। फोन आया और वह सोता रहा। मालिक पता लगाने आया कि क्या बात है, क्योंकि मालिक ने अपनी पत्नी को ही फोन किया था खबर करने को। फोन आया तो वह मजे से सो रहा था। उसने उसको नौकरी से निकाल दिया। वह भी सौभाग्य सिद्ध हुआ, क्योंकि फिर वह हजार आविष्कार कर सका। एडीसन ने लिखा है कि विश्राम की आकांक्षा से ही आविष्कार विकसित होते हैं निश्चित ही। पर जो कौम श्रम करने को बिलकुल आदर देगी—अब यह बड़ी उल्टी बात दिखाई पड़ेगी लेकिन जिन्दगी बहुत उल्टी है—वह आलसी हो जायगी और विश्राम को उपलब्ध न होगी। आलसी आदमी विश्राम को कभी उपलब्ध नहीं होगा। विश्राम को तो वह उपलब्ध होता है जो ठीक से श्रम कर लेता है। जो कौम श्रम पर जोर देगी, श्रम मनुष्य की स्वाभाविक आकांक्षा नहीं है, आकांक्षा तो विश्राम की है। श्रम हम करते ही इसलिए हैं कि सांझ विश्राम कर सकें और इसलिए निरंतर खोज होती चली जाती है। अब आटोमेटिक यंत्र पश्चिम ने खोज लिया है। वह आदमी को सब श्रम से मुक्त कर देगा। क्या आप सोचते हैं कि आदमी श्रम से मुक्त हो जायेगा ? नहीं। आदमी श्रम से मुक्त हो जाएगा लेकिन चौबीस घंटे विश्राम में बैठे रहना अर्थपूर्ण नहीं है। आदमी कुछ न कुछ करेगा, श्रम, क्रीड़ा और खेल में जीवन को लीला कर लेगा।

दुनिया की सारी संस्कृति उन लोगों ने विकसित की है जो 'लीजर' में और विश्राम में हैं। ताजमहल के सपने उन लोगों ने देखे हैं जो विश्राम में थे और पिरामिड भी उन्होंने ही सोचे हैं जो विश्राम में थे और संगीत और साहित्य और कला और मूर्ति और चित्र और दर्शन, सब विश्राम से पैदा हुए हैं। सारी संस्कृति विश्राम से जन्मी है, लीजर क्लास से पैदा हुई है। अगर हम सारे जगत को किसी दिन विश्राम में ला सकें तो संस्कृति का इतना एक्सप्लोजन होगा कि पिकासो ढूंढने पेरिस जाने की जरूरत न होगी। वह एक गांव में भी मिल सकता है और तानसेन को पैदा करने के लिए अकबर का दरवाजा जरूरी नहीं होगा। घर-घर में एक-एक बच्चा तानसेन हो सकता है, लेकिन इतने लीजर, इतने विश्राम की जरूरत है जिसमें यह संस्कृति विकसित हो सके। लेकिन हमारा देश श्रम को आदर दे रहा है। श्रम को आदर देने के कारण टेक्नोलाजी विकसित नहीं हो पाई। टेक्नोलाजी विकसित न होने के कारण समृद्धि और सम्पत्ति पैदा नहीं हुई। *सम्पत्ति लक्ष्मी की पूजा से पैदा नहीं होती, सम्पत्ति टेक्नोलाजी से पैदा होती है।*

आज जो देश समृद्ध हैं, अमरीका आज समृद्ध है और पृथ्वी पर पहला देश ठीक अर्थों में समृद्ध है। रूस अभी भी गरीब है यह ध्यान रहे। वह अभी भी समृद्ध नहीं है। रूस की समृद्धि जो थोड़ी-बहुत है वह भी बहुत मंहगी है और बमुश्किल पाई गई है। रूस में चालीस वर्षों में कोई एक करोड़ लोगों की हत्या करके किसी तरह का काम करवाया गया है और पूरा रूस एक कंसंट्रेशन कैंप बन गया है तब कहीं काम लिया जा सका है। आदमी से जबरदस्ती पीछे बंदूक के कुन्दे पर काम लिया जा सका है, फिर भी रूस समृद्ध नहीं हो सका है। आज भी रूस की बुनियादी हालत गरीबी की है। आज भी अमरीको अर्थों में रूस समृद्ध नहीं है। अमरीका अकेला मुल्क है जो समृद्ध हो सका। कैसे हो सका ? अमरीका समृद्ध हो सका है तकनीक के अत्याधुनिक विकास से। तकनीक ने श्रम को बदल दिया। लेकिन हम यहां उल्टी प्रक्रिया में लगे हैं। हम कहते हैं, थोड़ा-बहुत टेकनीक आ गई हो तो उसको भी श्रम से बदल दो। अगर टैक्सटाइल मिल चल रही हो तो उसको हटाओ और चर्खे चलाओ। हम सिर के बल शीर्षासन करने के ऐसे आदी हो गये हैं कि हमें सीधे पैर के बल खड़े नहीं होना चाहिए। हम कहते हैं, चर्खा चलाना बहुत अच्छी बात है। तो नेता रोज सुबह घर के सामने बैठकर चर्खा चला लेता है धूप में कि जनता देख ले। राजघाट पर गांधीजी के मरने के दिन बैठकर चर्खा चला लेता है कि कैमरामैन फोटो उतार ले। चर्खा चलाने में इतना क्या आदर है ? चर्खा अगर चलायेंगे तो मुल्क गरीब होगा, चर्खे से मुल्क अमीर नहीं होते। चर्खे तो बहुत दिन से चल रहे हैं। पांच-छः हजार साल से हम चर्खा चला रहे हैं। कौन-सी अमीरी आई ? अमीरी टेकनीक से आती है, क्योंकि टेकनीक हजार आदमी का काम अकेला कर देता है, लाख आदमी का काम अकेला कर देता है। टेकनीक हमारा बढ़ा हुआ हाथ है, टेकनीक हमारा हजार गुना हो गया श्रम है। और हम विश्राम में हो जाते हैं और विश्राम से बैठा आदमी नये आविष्कार कर पाता है और एक चक्र शुरू हो जाता है जिसमें समृद्धि आती है। इस देश में वह चक्र आज तक शुरू नहीं हो पाया और आज तक इस देश के समझदार लोग उल्टी बातें समझा रहे हैं।

यह हमारा सोचना बहुत मंहगा और खतरनाक है। सिकुड़ने का सोचना, संकोच का, दबने का, नीचे उतरने का। नहीं, टेक्नोलाजी को श्रम में नहीं बदलना है, श्रम को टेक्नोलाजी में बदलना है तो देश में अमीरी पैदा होगी। खेत जितनी संपत्ति हाथ से पैदा कर सकते थे, कर चुके और खेत भी

थक गए बुरी तरह, और हाथ भी थक गए बुरी तरह। अब खेत पर हाथ की जगह मशीन चाहिए, लेकिन मशीन हमें भौतिकवादी मालूम पड़ती है। मशीन को उपयोग में लाने वाले लोग मैटीरियलिस्ट मालूम पड़ते हैं। हम अध्यात्मवादी लोग हैं, हम मशीन का कैसे उपयोग कर सकते हैं! और अगर करेंगे भी तो बेईमानी से करेंगे। अब यह मैं माइक का उपयोग कर रहा हूं। एक जैन आचार्य हैं जो अभी तक माइक का उपयोग नहीं करते हैं। क्योंकि खयाल था कि आवाज जोर से पैदा होगी तो कीटाणु मर जायेंगे। लेकिन अब सच तो यह है कि अगर कीटाणु मरते होंगे तो थोड़ी आवाज में भी मरते होंगे, मुंह पर पट्टी बांधने में भी मरते होंगे। असल में अगर आवाज से कोई मरता हो तो होंठ सी देने चाहिए, लेकिन उनको दिखाई पड़ा कि मुंह पर पट्टी बांधकर दस-पांच लोग ही मुश्किल से सुन पाते हैं। बड़ी भीड़ इकट्ठी हो इसका भी रस नहीं छूटता, तो अभी बेईमानी की तरकीब निकाली है। अभी बंगलोर में माइक से बोले तो लोगों ने कहा, आप और माइक से बोल रहे हैं? उन्होंने कहा मैं माइक से नहीं बोल रहा हूं, मैं सिर्फ बोल रहा हूं। लोगों ने माइक सामने रख दिया तो मैं क्या करूं? श्रावक सुनना चाहते हैं, वह पाप उनके जिम्मे है, वह माइक उन्होंने रखा है, मैं तो अपनी जगह बैठकर बोल रहा हूं। न तो मैं यह कहता हूं कि माइक रखो, न मैं यह कहता हूं कि माइक मत रखो।

यह बेईमान तरकीबें हैं मशीनों का उपयोग करने की। ये ज्यादा 'डिसआनेस्ट मीन्स' हैं। अगर मशीन का उपयोग करना है तो सीधा करो। उसमें पाखंड और बेईमानी की क्या जरूरत है। नहीं, पर यह तरकीब निकालनी पड़ेगी, क्योंकि मशीन के उपयोग के साथ हमें खयाल है कि भौतिकवाद है। यह देश भौतिकवाद का विरोधी रहा है, इससे समृद्ध नहीं हो सका। अगर किसी देश को समृद्ध होना है, उसे ठीक अर्थों में भौतिकवादी होना जरूरी है, लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि भौतिकवादी होने से कोई गैर-अध्यात्मवादी हो जाता है। यह भी एक भ्रांत तरीका है। अगर एक मंदिर हमें बनाना हो, तो मंदिर पर सोने का शिखर अकेला नहीं रखा जा सकता। नीचे नींव में पत्थर भी भरने पड़ते हैं, लेकिन अगर कोई यह समझ ले कि हम नींव को पत्थर न भरेंगे, हम तो सिर्फ स्वर्ण कलश चढ़ायेंगे, तो मंदिर पर स्वर्ण कलश कभी न चढ़ेगा। स्वर्ण कलश में और नींव के गंदे और कुरूप पत्थर में कोई भेद नहीं है। वह नींव का पत्थर ही स्वर्ण के कलश को सम्हालता है। अध्यात्म के कलश अगर देश के मंदिर पर चढ़ाने हों तो नींव में भौतिकवाद के पत्थर बिछाने पड़ेंगे।

इसके सिवाय कोई रास्ता नहीं है। देश का मंदिर अगर बनाना है तो नींव भौतिकवाद की होगी और कलश अध्यात्म का। अध्यात्म और भौतिकवाद का विरोध बिलकुल झूठा है, वैसा विरोध कहीं भी नहीं है। आत्मा और शरीर का विरोध झूठा है, परमात्मा और प्रकृति का विरोध झूठा है। लेकिन इस देश में इसे डुआलिज्म में समझाया गया है। हमें यही समझाया जा रहा है कि शरीर को मारो अगर आत्मा को पाना है। दीन-हीन बनो, दुखी बनो, दरिद्र बनो, भूखे रहो अगर आत्मा को पाना है। मैं नहीं सोचता कि स्वस्थ शरीर हुए बिना कोई आत्मा को उपलब्ध हो सकता है। मैं नहीं सोचता कि जीवन की सामान्य जरूरतें पूरी हुए बिना कोई आत्मा की तरफ यात्रा कर सकता है। यह असंभव है। यह ऐसा ही है जैसे नींव के पत्थर के बिना कोई स्वर्ण कलश चढ़ाने की कोशिश कर रहा हो। नहीं, भौतिकवाद और अध्यात्मवाद विरोधी नहीं हैं। अगर कोई कहे कि वीणा को हटाओ, हम तो सिर्फ संगीत को प्रेम करते हैं, सिर्फ संगीत चाहिए, वीणा तो भौतिक है, तो ध्यान रहे, वीणा तो बिना संगीत के हो सकती है, लेकिन संगीत बिना वीणा के नहीं हो सकता है। शरीर तो बिना आत्मा के हो सकता है कि आत्मा का हमें कोई पता ही न हो, हम सिर्फ शरीर में जीते रहे हों, लेकिन अकेले आत्मा बिना शरीर के नहीं हो सकती। यह ध्यान रहे, निकृष्ट के बिना श्रेष्ठ नहीं हो सकता, लेकिन श्रेष्ठ के बिना निकृष्ट हो सकता है। यह बड़ी अद्भुत बात है, लेकिन जिंदगी ऐसी है। यहां नींव हो सकती है बिना कलश के, लेकिन कलश बिना नींव के नहीं हो सकता। यहां जड़ें हो सकती हैं बिना वृक्ष के, लेकिन वृक्ष बिना जड़ों के नहीं हो सकता। जड़ें कुरूप हैं, माना, लेकिन जड़ों में रस है जो वृक्षों के फूलों तक पहुंचता है। यह देश जड़ों को इन्कार कर रहा है और कहता है कि सिर्फ फूलों को प्रेम करेंगे। यह प्रेम असम्भव है। यह प्रेम बहुत मंहगा पड़ गया। पांच हजार साल हमने फूल से प्रेम करने की कोशिश की जड़ों को इन्कार करके, आत्मा को पाने की कोशिश की शरीर से दुश्मनी करके। प्रकृति को निकृष्ट करके, प्रकृति को असार करके परमात्मा का मंदिर खोजा, वह हमें नहीं मिला। बल्कि फूल तो मिले ही नहीं, जड़ें भी कुम्हला गईं और सूख गईं, क्योंकि जड़ों को पानी हमने पीने नहीं दिया। जब हम जड़ों के दुश्मन थे तो पानी कैसे देते ?

समृद्धि पैदा होगी भौतिकवाद के सहज स्वीकार से। यह देश अपने थोथे अध्यात्मवाद से मरा है। थोथा अध्यात्मवाद मैं उसे कहता हूं जो भौतिकवाद

का विरोधी है, ठीक राइट स्प्रीच्युअलिज्म उसे कहता हूं जो भौतिकवाद को समाहित कर लेता है, जो कहता है—आये भौतिकवाद भी हममें समा जाय। भौतिकवाद हमारा कुछ न बिगाड़ पायेगा, लेकिन यह हमारी अब तक की वृत्तियां रही हैं, हम समृद्ध कैसे हों। हमने दरिद्रता के सब उपाय किये और हम सफल हो गए। हमने समृद्धि का कोई उपाय नहीं किया, क्योंकि हमने मूल आधार नहीं रखा। एक बात, भौतिकवाद का सम्यक् स्वीकार चाहिए। आने वाली भारत की नई पीढ़ी को भौतिकवाद को आत्मसात् करना होगा। यह कहकर कि पश्चिम भौतिकवादी है इन्कार करने से नहीं चलेगा, क्योंकि जो पश्चिम भौतिकवादी है उसी के सामने हमें हाथ फैलाने पड़ते हैं, भीख मांगनी पड़ती है और यह बहुत अशोभन है कि अध्यात्मवादी भौतिकवादियों के सामने भीख मांगे। लेकिन हम बीस साल से भीख मांग रहे हैं और आगे भी अभी कोई उपाय नहीं दिखता कि भीख मांगना बन्द करने की स्थिति आयेगी। भीख हमें मांगनी ही पड़ेगी, क्योंकि हम अध्यात्मवादी हैं। हम सीधे आत्मा में जाना चाहते हैं—तो कौन गेहूं पैदा करे, कौन मशीन लाये, कौन टेक्नोलाजी पैदा करे! नहीं, वह हमसे नहीं होगा, वह पश्चिम करे और हम भीख मांगें। यह हमारी पुरानी तरकीब है, पाप कोई और करे, पुण्य हम करें। एक आदमी संन्यासी हो जाता है, वह कहता है, दूकान नहीं करेंगे, खेती में पाप है, हम पैसा नहीं कमायेंगे, पैसा नहीं छुएंगे, छूने में पाप है।

अभी दो संन्यासी मुझसे मिलने आये। उनसे मैंने कहा, आप कल सुबह आ जायं। उन्होंने कहा, बड़ी मुश्किल होगी, क्योंकि हम पैसे नहीं छूते। कोई आदमी हमारे साथ रहता है, जो पैसा खीसे में रखता है। तो हम उस आदमी को पूछ लें कि वह कल सुबह आ सकता है तो हम आ सकते हैं। मैंने कहा, बड़ा मुश्किल है। मैंने कहा, आप पैसा क्यों नहीं छूते? उन्होंने कहा, पैसा छूना पाप है। तो मैंने कहा, वह आदमी आपके लिए पैसे छू रहा है तो वह किसके लिए पाप कर रहा है? नर्क वह जायेगा, आप स्वर्ग चले जायेंगे। मैं दूकान करूं तो पाप है, मैं दूकान न करूं और दूकान करने वाले मुझे जिंदगी भर पालें तो पुण्य है। पाप कोई और करे, पुण्य हम करेंगे। यह हमारी पुरानी प्रवृत्ति है। पश्चिम भौतिकवादी हो, पेट हमारा खाली है, रोटी पश्चिम दे; पाप अगर होगा, नर्क अगर जायेंगे तो पश्चिम के लोग जायेंगे। बड़े मजे की बात है। अमरीका का किसान नर्क जायेगा, क्योंकि भौतिकवादी है और हम स्वर्ग जायेंगे, क्योंकि हम अध्यात्मवादी हैं। और अमरीका का किसान हमारे

लिए मेहनत करेगा। चार किसान अमरीका में मेहनत कर रहे हैं, उनमें से एक किसान की मेहनत हमें मिल रही है। आज अमरीका का चौथाई भोजन हम ले रहे हैं, लेकिन बेशर्मी के साथ। यह हमें खुद पैदा करना पड़ेगा, लेकिन हम कैसे पैदा करेंगे ? अगर भौतिकवाद की स्वीकृति नहीं है तो यह पैदा नहीं होगा। इस देश में भौतिकवाद के अस्वीकार के कारण विज्ञान भी पैदा नहीं हो पाया।

हमारी जलती समस्या यह है कि हम कैसे तीव्रता से विज्ञान पैदा करें, कैसे हम साइंटिफिक हो जायं, लेकिन हमारा सब सोचना गैर-साइंटिफिक है। हमारे चिंतन के सब आधार गैर-साइंटिफिक हैं। अगर हम सोचें तो हम हमेशा गैर-साइंटिफिक ढंग में ही सोचेंगे। हमारे सोचने का पूरा ढांचा ऐसा है।

अब जनसंख्या बढ़ती है। वह हमारा सवाल है आज अमरीका के सामने। हमारे विचारशील लोगों से पूछिये जाकर कि जनसंख्या बढ़ती है तो क्या करें ? वे कहते हैं कि ब्रह्मचर्य धारण करो। बड़े नेता लोग कहते हैं, ब्रह्मचर्य धारण करो, जनसंख्या नहीं बढ़ेगी। पांच हजार साल का अनुभव यह कहता है कि कितने लोगों ने ब्रह्मचर्य धारण किया ? लेकिन अनुभव से हम कुछ सीखते नहीं और कितने लोग ब्रह्मचर्य धारण कर लेंगे वह भी हम नहीं सोचते। और खतरा तो यह है कि अगर चालीस करोड़ का मुल्क एकदम से ब्रह्मचर्य धारण कर ले तो हम एक दूसरे की गर्दन घोंट डालेंगे, इतना हमारे भीतर काम का वेग इकट्ठा हो जायगा कि जिन्दा रहना मुश्किल हो जायेगा। वह बच्चा पैदा करने से भी मंहगा पड़ेगा, लेकिन उसका हमें कोई खयाल नहीं है। वैज्ञानिक साधन से हमारा विरोध है तो बर्थ कंट्रोल से भी हमारा विरोध है, क्योंकि वह वैज्ञानिक साधन है। सोचने का वह वैज्ञानिक ढंग है, लेकिन उससे हमारा विरोध है। हम किसी भी चीज के संबंध में वैज्ञानिक बुद्धि से सोच नहीं पाते। वैज्ञानिक बुद्धि हमारे पास नहीं है। बुद्धि वैज्ञानिक हो सकती है आज भी। उसके आधार बदलने होंगे।

— एन० जी० वखारिया, अहमदाबाद

सम्राट और भिखारी

करुणा का अर्थ है—देने के लिए जीना। वासना का अर्थ है—लेने के लिए जीना। वासना भिखारी है, करुणा सम्राट है।

प्रभु लीला || आबू साधना शिविर-8

माउण्ट आबू के लोग धन्यभागी हैं। मैं नहीं जानता, वे अपने को क्या समझते हैं। पर मैं उन्हें धन्य ही समझता हूं जिनके यहां भगवान श्री के चरण एक बार भी पड़ते हैं। और जिन भगवान के दर्शन के लिए भक्तजन हजारों मील की दूरी से भागे आते हैं वह भगवान घर पर बैठे-बिठाए जिन्हें जाकर दर्शन दे आते हों, उनके भाग्य को क्या कहियेगा ? हां, भगवान श्री १३ अक्टूबर '७२ को चौथी बार माउण्ट आबू पधारे और हमारी रुग्ण आत्माओं के स्वास्थ्य हेतु १३ से २१ अक्टूबर तक विभिन्न प्रयोग कराते रहे।

मित्रो, तुम तो जानते ही हो कि मेरा लिखना-लिखना कब का छूट गया। लिखना अब होता ही नहीं। हां, दिल मिले तो बातें होती हैं और खूब होती हैं। इस समय मैं तुमसे बातें ही कर रहा हूं। मा योग सोहन, स्वामी आनन्द वेदान्त व और भी बहुतेरे प्रेमी जिन्हें भी शिकायत है कि मैं अब लिखता क्यों नहीं, कोई भी इस धोखे में मत आना कि आज लिख रहा हूं, वर्ना मजा न ले पाओगे। लिखना होता है सोच-विचार से, और सोच-विचार की सामर्थ्य मेरी कब की चुक गई। लिखना होता है भाव से, और भाव मेरे पिघलकर बह गए और जाने किस अज्ञात में विलीन हो गये। अतः मुझे आमने-सामने खड़े बातें करते हुए पा सकें, तभी मजा आ सकेगा। मेरे सामने तो आप प्रत्यक्ष हैं इसलिए ही बातें कर पा रहा हूं। अतः यह पोयट्री नहीं, संस्मरण नहीं, रिपोर्ताज नहीं, महज बातें हैं।

कुछ मित्र जो शिविर नहीं जा सके थे, पूछते हैं कि वहां क्या हुआ। मित्रों की अपनी मजबूरी है कि वे पूछते हैं और मेरी अपनी मजबूरी है कि मैं बकबक करने लग जाता हूं। अस्तु:

इस बार माउण्ट आबू शिविर में कई बार जब भगवान श्री की वाणी से अमृत-गंगा बहती रहती और ऊपर से चंद्रमा अपनी शीतल छाया हम पर फैलाये रहता और वृक्ष और चट्टान भी चुप्पी ताने पूरे हृदय को खोलकर उस दिव्य वाणी को पीते रहते, तो कई बार मेरा जी करता कि मैं आसमान से भी अधिक ऊंचाई पर चढ़ जाऊं और वहां से सारे जगत को संबोधित करके चीखूं कि कौन कहता है, कृष्ण जिन्दा नहीं हैं ? और कौन कहता है गोपकायें

मर चुकी हैं ? आबू पर्वत और वहां के लहलहाते वृक्ष साक्षी हैं कि कृष्ण हैं और गोपियां भी। आसमान के सितारे गवाह हैं कि इस शिविर में ७०० गोपियां नाचती-थिरकती व सुध-बुध खो देती थीं। हां, कुछ गोपियां प्रगट थीं, कुछ अप्रगट थीं। यह अपनी-अपनी हिम्मत की बात है। यह जीवन को जिये हुए होने की बात है कि कहां, कब, कितना समर्पण घटित होता है। इस बार प्रभु-लीला के दौरान २१५ गोपियां लाज-शरम-भय सब छोड़कर समाज के समक्ष प्रगटरूप हो गईं। हां, २१५ नये संन्यासी हुए। इस तरह प्रगट गोपियों की संख्या ४२५० पहुंच गई। अप्रगट गोपियां तो लाखों हैं और वे कुछ कम गोपियां नहीं हैं, पर या तो वे अपने प्रेम को प्रगट नहीं होने देना चाहतीं या समाज से भयभीत हैं। मगर कृष्ण की बंसरी यों ही बजती रही (और बजती रहेगी) तो वे कब तक अपने अवगुंठन में छुपी रह सकेंगी ? [वहां घाटी में प्रभु के निकट तो सभी प्रगट थीं। वस्त्र न सही, उनके नृत्य, उनका पागलन सब प्रगट कर देता था। मैं समाज के समक्ष प्रगटरूप होने की बात कर रहा हूं।]

कृष्ण की विनोदप्रियता का तो तुम सबको पता ही है। यह कितना विचित्र है कि जो तुम्हें पता है, वही बार-बार मुझसे पूछते हो और बार-बार मैं बताते नहीं थकता और तुम सुनते नहीं अघाते। तो सुनो, एक दिन एक गोपी भगवान से कहने लगी, "मेरी नींद ४ बजे नहीं खुलती। ध्यान कब करें? सुबह बच्चों के स्कूल का समय हो जाता है, उन्हें तैयार करने में लग जाना पड़ता है।" भगवन् मुसकाकर कहने लगे—"४ बजे नींद कैसे खुलेगी, देर तक काम करती है तो। जरूरत भी क्या है ४ बजे उठने की। देर तक सोया कर। युग बदल गया। पहले घर के स्वामियों को उठने दिया कर। हाथ-मुंह धोकर चाय आदि तैयार कर लें तब जगाकर।" कृष्ण की ऐसी मीठी चुटकियों पर गोपियां बलि-बलि जाती हैं, यह तो प्रत्यक्षदर्शी ही देख-जान सकते हैं।

सुना है एक बार भगवान बम्बई के पाटकर हाल से प्रवचन करके लौट रहे थे। कार में बैठे ही थे कि योग चिन्मय वहां आ विराजे। और भगवान ने ली मीठी चुटकी—"भई, तुम्हारी शादी कर दी, अब बच्चे-वच्चे पैदा करो न!" प्रभु ही जाने अपनी महिमा कि कब वह क्या कहता है और उसके कब क्या अर्थ होते हैं। क्योंकि कई बार उनकी हंसी में कही गई बात भी अर्थवान हो सकती है और कई बार गंभीर ढंग से कही गई बात भी महज मजाक हो सकती है। राजकोट के धीरूभाई ने तो इसका एक उदाहरण भी दिया कि

एक बार भगवान श्री ने सुरेन्द्रनगर में वक्तव्य दिया कि हिन्दुस्तान में २० वर्षों के लिए प्रजातांत्रिक तानाशाही [डेमाक्रेटिक डिक्टेटरशिप] की जरूरत है। गुजरात के सारे अखबारों ने इसे मुख्य पृष्ठ पर मुख्य समाचार की तरह प्रकाशित किया। फिर प्रभु जी वहां से लौटते समय अहमदाबाद में रुके तो पत्रकारों ने घेर लिया। और तब उन्होंने कह दिया कि मैंने तो यों ही मजाक किया था। और मुझे लगता है कि मजाक तब नहीं किया था, मजाक अब किया है उसे मजाक कहकर जो कि मजाक नहीं था। और पत्रकार बन्धु मजाक न समझ पाए और लौट आये। हंस पडे न आप ? अरे यह तो कुछ भी नहीं है। ऐसे मजाक करते हैं वे कि हंसते-हंसते आपकी कुंडलिनी जग जाय।

भगवान भी क्या-क्या लीलाएं करते हैं कि ऐसी लीलाएं भगवान के ही वश की हैं। हां, शिविर के अंतिम दिन स्वामी चैतन्य वीतराग एवं मा योग माया को पति-पत्नी हो जाने पर परम स्नेह से आशीर्वाद दिये। ऐसे सहज बरसते आशीर्वादों को अमृतसरी आर्यसमाजी क्या समझेंगे बेचारे। हां, कितने अहमद करीम उसकी छत्र-छाया में स्वामी प्रेम करीम बन गए, कितने स्वामी ज़ाहिद हुसेन। भगवन् की गाड़ी भी तो मि० खान चलाते थे जो एक दिन कहीं १० मिनट को लापता हो गए तो, भगवन् की गाड़ी १० मिनिट मि० खान की प्रतीक्षा में खड़ी रहनी पड़ी और माइक पर मि० खान के जल्दी आने का निवेदन होता रहा। हे प्यारे मोहम्मद ! बहुतेरे तुम्हारे प्रेमी समझते हैं कि तुम अब जिन्दा ही नहीं हो। खुदा भी कहते हैं और जिंदा नहीं हो, ऐसा भी समझते हैं। उन्हें दिखता ही नहीं कि तुम्हारी तलवार कितनी तेज चल रही है कि बेवकूफियों के अनेक घेरे कट-कटकर ऐसे गिर रहे हैं जैसे किसी तेज तूफान से सरसों के पके फूल झरते हैं ताकि मिट्टी में मिलकर नये अंकुर निकल सकें।

शिविर में हुई इस बार की प्रभु-लीला में एक दिन एक क्षण बड़े सन्नाटे का भी गुजरा। उस समय आसमान और जमीन एक हो गए। वायु थम गया। प्रकृति सहम गई। सारे जगत की गति जैसे उस एक क्षण का अवलोकन कर लेने के लिए रुक गई। वह क्षण था १७ अक्टूबर १९७२ की संध्या ८ बजे का, जब भगवान श्री के चाचा ने संन्यास ग्रहण किया। मंच पर दो-तीन मित्र और उपस्थित थे। उनमें एक भगवान श्री की बहन मा योग भक्ति भी थीं। वे भगवान श्री को फूल माला पहना रही थीं व दीप जलाकर, थाल सजाकर आरती उतार रही थीं, इसी बीच चाचा ने भतीजे के या साधक ने सिद्ध के या शिष्य ने गुरु के या भक्त ने प्रभु के [जिसे जो भी ठीक लगे, वह

वैसा ही समझे] चरणों में सिर रख दिया। सब कुछ क्षण भर को ठहर गया। माइक से आवाज आना बन्द हो गई। पता नहीं बोलने वाली मा आनन्द मधु की बोलती बन्द हो गई या माइक ने क्षण भर को अपना काम करना बंद कर दिया। और तभी एक महाक्षण आया जब भगवान श्री बहन की ओर से मुड़े और चाचा जी के गले में संन्यास-सूचक माला डाले और अखण्ड ब्रह्माण्ड स्वरूप वे चाचा के पैरों पर झुक गये। देखने वालों की हिचकियां बंध गई। वृक्षों पौधों तक के रोंगटे खड़े हो गए। वायु तक की सांसें रुक गईं। मनुष्य के मन तक ठहर गए। उस क्षण की चर्चा असंभव है, असंगत है।...

और क्या सुनाऊं ? मैंने कहा न कि कई बार वे मजाक में गहरी बातें कह जाते हैं और कई बार गंभीर बातों में भी मजाक कर जाते हैं। असल में उनसे बहुत सावधान रहने की जरूरत है अर्थात् उनके पास बहुत होशपूर्वक रहना चाहिए हमें ताकि हम उन्हें सुन सकें, जान सकें। लेकिन दिनेश भारती ठीक कहता था। उनके निकट होने पर सुध बुध खो ही जाती है तो कोई क्या करे ! हां तो बताने जा रहा था एक दिन एक मा ने कहा : "ध्यान के समय मुझे मौत का भय आ घेरता है ?" भगवान हंसते हुए ऐसे बोलते हैं जैसे कोई एकदम साधारण बात कह रहे हों। और उनके लिए साधारण ही बात है। वे हंसते हुए कहते हैं—"भय से लड़ो मत, भय है तो स्वीकारो, मृत्यु है तो स्वीकारो। फिर मैं तो हूं भय किस बात का।

और हां, यह बताना तो भूल ही गया कि इस बार प्रवचन का विषय था 'अध्यात्म-उपनिषद्'। अंतिम दिन अंतिम पद पढ़ते-पढ़ते मा योग तरु रो पड़ीं जब उन्होंने पढ़ा कि—"शिष्य ने गुरु से कहा कि अभी-अभी जो जगत् यहां दिखाई पडता था, वह कहां गया ?" इस पद पर बोलते हुए भगवान श्री ने कहा कि वह शिष्य श्रवण मात्र से ज्ञान को उपलब्ध हो गया। इस उपनिषद् के शिष्य के लिए तो उपनिषद् समाप्त हो गया, पर तुम्हारे लिए उपनिषद् यहां शुरू होता है। मैं कामना करता हूं कि कभी तुम भी कह सको कि अभी-अभी जो जगत् यहां दिखाई पड़ता था, वह कहां गया ? कितनी हिचकियां बंध गईं, कहना मुश्किल है। जिस आनन्दमय पीड़ा के कारण हिचकियां बंधी, उसे यहीं प्रणाम कर लेना चाहता हूं, वर्ना बाद में याद न रहेगा।

...एक बात और। उन कृष्ण की गोपियां थीं, राधा एक थी। इन कृष्ण की राधाएं हैं, शायद सभी राधाएं हैं।

अन्त में, अपार अनुकम्पा एवं असीम करुणा वाले भगवान रजनीश को प्रणाम करता हूं जिन्होंने मुझ जैसे महापापी को भी स्वीकार किया हुआ है। न केवल स्वीकार किया है, प्रत्युत् उद्धार करने का दायित्व भी लिया है। बहुतेरे मेरे मित्र समझते हैं कि मैं बहुत भला आदमी हूं। संभव है इसे भी मेरे भले होने का एक अंग समझ लें कि जो अपने को पापी कह रहा हूं। असल में प्रेम अवगुण देखता ही नहीं। अन्यथा मेरा पापी होना एक सत्य है। कुछ ऐसे भले और सरल लोग भी मिले हैं जिन्होंने मुझसे मेरे पिछले जीवन के बारे में जानना चाहा। मगर जब मैंने अपने पापों की चर्चा की तो उन्होंने शायद समझा कि यह मजाक कर रहा है। जैसे कि मज़ाक करना कोई मज़ाक है। नहीं, मज़ाक करने की मेरी सामर्थ्य नहीं। मज़ाक करने के लिए इतना बड़ा कलेजा चाहिए कि समस्त ब्रह्माण्ड उसमें समा जाए। ऐसा आदमी क्या मज़ाक कर सकता है जो किसी के थोड़े से प्रेम से घबड़ा जाये और प्रेमी को छोड़कर भग जाये। हां, मेरे साथ अभी-अभी ऐसा हुआ। मेरा एक मनुष्य से प्रेम हो गया तो मैं उसे तड़पता छोड़ एकदम अचानक उससे दूर भग आया। मेरी उसके सामने फिर पड़ने की हिम्मत न हुई। इतने कमजोर लोग मजाक नहीं कर सकते।

हे मेरे प्रभो, मुझको संभालो ! मेरी नाव अधर में डगमग-डगमग कर रही है। सारी दुनिया के तूफान एक साथ उसे हिला-कंपा रहे हैं। मेरी आत्मा तक थर्रा गई है। मेरी कुछ भी समझ में नहीं आता, मेरे नाथ ! मेरा इस जगत् में कोई नहीं है। मैं बहुत अकेला हूं प्यारे प्रभो ! ऐसा भी तो कोई नहीं है जिससे अपने दुख की चर्चा करूं। मुझ बेसहारे को सहारा दो नाथ ! हे प्रभो क्या मेरी आवाज तुम तक नहीं पहुंचती ? क्या मेरा रोदन तुम्हें नहीं सुनाई पड़ता ? क्या तुम मेरे लिए कुछ नहीं करोगे ?? मेरे खुद के किए कुछ न होगा!! तुम्हीं मुझे उबार लो !! तुम्हीं शरण दो तो तुम्हारे चरणों में विश्राम मिले!! हे करुणामय, और कितनी देर है ? कितनी देर है ??

—स्वामी अगेह भारती
जेड–२१७ / सी, अपरलाइन्स,
जबलपुर (म० प्र०)

●●

श्रद्धा-सुमन

अनस्तित्व में ही सारा अस्तित्व है। सागर में लहरें हैं और आदमी सिवाय आती-जाती लहरों के अतिरिक्त और क्या है ? जन्म और मृत्यु अस्तित्व के बिन्दु के दो छोर हैं और यह सब जीवन-लीला अस्तित्व में होकर गुजरती है— पर जो जीवन-लीला के पारदर्शी-महाचेता प्रबुद्ध पुरुष हैं, वे अनस्तित्व के बिन्दु से ही जब सारे जगत को जानते हैं तो जागृत वचन कह उठते हैं: "सब लीला है।"

पर, कहां यह आयाम और कहां हमारा पार्थिव आयाम, जो क्षण-क्षण बदलते जीवन स्वरों को सुख-दुख की तरंगों में झेलता है, जन्म होता है तो सुख और मृत्यु होती है तो दुख—बस इन्हीं विरोधाभासों में चित्त डोलता रहता है।

लेकिन, हम यहां ऐसे दो अस्तित्व के सौरभित पुष्पों पर अपनी भावांजलि दे रहे हैं—जिन्होंने विरोधाभास के पार जीवन के सत्य को जाना था।

स्वामी स्वराज्यानंद जी समर्थ (श्री बाबूलाल जी डेरिया, ग्राम : बाबई, जिला : होशंगाबाद, मध्यप्रदेश) ने अभी २ नवंबर, ७२ को पार्थिव शरीर का त्याग किया। जीवन के घने संघर्षों में आपने शांतिपूर्ण क्रांति का आवाहन किया और अभी १ वर्ष पूर्व भगवान श्री द्वारा प्रणीत नव-संन्यास में क्रांतिकारी कदम रखा, और जो निखार और ओज व्यक्तित्व में परमात्मा की अनुकंपा से आई : उस अलौकिक छवि के साथ परमात्म-सत्ता में आप विलीन हुए। हमारे शत्-शत् वंदन।

श्री गणेशप्रसाद जी पांडे (एडव्होकेट) युक्रांद के सह-संपादक श्री आलोक पांडे के पिता श्री, जिन्होंने ३ नवंबर को प्रात: भगवत् स्मरण के बाद अपना पार्थिव शरीर का त्याग किया। आपका संरक्षण और प्रेम युक्रांद को सदैव मिला और जिन्होंने विद्यार्थी जीवन से ही खेल को ऐसा अपनाया कि जीवन की अंतिम परिणति भी खेल-खेल में ही की। हमारे शत्-शत् वंदन।

कव्हर २ से आगे ▸▸▸

जलगांव	१६–१७–१८ नवंबर, ७२	श्री भीकमचंद जैन, न्यू इंडिया आइल मिल्स, शिवाजी नगर, जलगांव
चालीसगांव	२२–२३–२४ नवंबर, ७२	—
धूलिया	२६–२७–२८ नवंबर, ७२	डा० एम० बी० शाह, कुंज-बिहार, नेहरू नगर, एवं श्री एन० बी० देशपांडे, पो० बा० नं० ७२, धूलिया (महा०)
मालेगांव	३० नवं०, १ दिसंबर, ७२	—
नासिक	२–३–४ दिसंबर	श्री हरिकासिनाथ निसाल, हरिबाई बाड़ा, डिंडोरी नाका, पंचवटी, नासिक (महा०)
शाशाराम	२५–२६–२७ दिसंबर, ७२	डॉ० श्री रामवचन श्रीवास्तव मोहल्ला–गोरक्षणी, शाशाराम (बिहार)
डालमियांनगर	२९–३०–३१ दिसं०, ७२	श्री चेतनदास जी मोहरा, B. A. L L. B. डालमियानगर

नई ज्योतियां ! दिव्य वाणी ! जीवन संगीत से आलोकित !

नई साज सज्जा में

भगवान रजनीश के विचारों की आध्यात्मिक

त्रैमासिक संकलन पत्रिका

ज्योति शिखा

संपादन : मा योग क्रांति, स्वामी कृष्ण कबीर

वार्षिक : मूल्य ८ रु.

संपर्क : जीवन जागृति केन्द्र,

३१, इजरायल मोहल्ला, भगवान भुवन,

मस्जिद बंदर रोड, बम्बई–९

Phone : 327618

भगवान की   अपार करुणा

अब से संन्यासी मित्रों, प्रेमी साधकगणों एवम् आध्यात्मिक पिपासुओं को भगवान रजनीश प्रतिमाह की १ली तारीख को सुबह ८-३० बजे से ९-३० बजे तक, वुडलैण्ड एपार्टमेंट्स नं० ए–१, पैडर रोड, बम्बई २६ (फोन: ३८११५९) के हाल में अपने दिव्य दर्शन देकर कृतार्थ किया करेंगे।

निवेदक : जीवन जागृति केन्द्र, बम्बई

नवम्बर १९७२

युक्रांद